शाल-गिरह की पुकार पर

महाश्वेता देवी

अनुवादक
प्रमोद कुमार सिन्हा



राधाकृष्ण

सन 1750 में देश के हालात क्या थे—यह भागलपुर से राजमहल तक के आदिवासी जानते नहीं थे। वे संथाल थे, पहड़िया थे या माल पहड़िया। आंदोलत प्रांतघने जंगल और छोटे-छोटे पहाड़। बड़ी प्राचीन अरण्यभूमि है यह, भारत के इतिहास की बहुत-सी घटनओं की मूक साक्षी। भागीरथी के पश्चिम में राजमहल से लेकर हजारीबाग तक के जंगल और फिर मुंगेर, उत्तर में भागलपुर, दक्षिण में बीरभूम, बर्द्धमान, बाँकुड़ा और मेदिनीपुर से मयूरभंज तक का विस्तार है।

तब संथाल परगना या दामन-ए-कोह जैसे नाम अनचीन्हे थे। फ़ौज के बार-बार रौंदने के कारण त्रस्त बंगाल का सूबा था यह। पर अब इन सब का कौन पता करे?

संथाल नहीं रखते थे, पहड़िया नहीं रखते, माल पहड़िया भी नहीं रखते थे। जंगल हैं, शिकार हैं। पहड़िया और माल पहड़िया बस जंगल जलाकर झूम फसल तैयार करते थे। जंगल की ज़मीन में संथाल उगाते हैं धान, दाल और सरसों। महुआ तेल की बत्ती जलाओ। रीठे के बीज से कपड़े धोओ। अगर नमक चाहिए तो दूर गाँव की हाट में जाओ। नमक ख़रीदो, कपास ख़रीदो! फिर सूत कातो, ताँत से कपड़े बुन लो। नवाब अलीवर्दी कौन है, कौन रघुजी भोंसले है, कहाँ हैं ईस्ट इंडिया कम्पनी के ललमुँहे बंदर—अब कौन ऐसी खबरें रखे?

कोई खबर नहीं रखता। 1750 की फ़रवरी में तब कड़ाके की सरदी पड़ रही थी। संथालों के गाँव के प्रत्येक घर में दिन में भी अलाव जल रहा था।

एक घर के सामने कुछ औरतें इंतजार कर रहीं थीं, मुर्मू के घर के सामने। अब मुर्मू, हँसदा, हेम्ब्रम—यही जातियां रहती हैं यहां। घर की बड़ी बहू के बच्चा होना है। सुंद्रा मुर्मू के घर। सुंद्रा वीर—शिकार-उत्सव के दिन ही नेतृत्व उसके हाथ में चला आया था। सुंद्रा के ऊपर सभी का अगाध विश्वास है।

सुंद्रा इस जंगल को, इस बीहड़ के आश्रय को छोड़कर साहस करके लखा सोरेन और आटवारी मुर्मू के साथ गिरिया चला गया था। वहां वह एक राजपूत सामंत के यहाँ खेती-बारी करता था। चला गया था सिर्फ स्वभाव की अस्थिरता के कारण। रह-रहकर सुंद्रा बोलता था, "धरती कितनी बड़ी है, जरा देख आऊँ।"

पहड़िया पहाड़ पर ही रहते हैं। वहीं माल पहड़िया भी रहते हैं। एक बार तो सुंद्रा सरदियों की अमावस के दिन चला गया था माल पहड़िया लोगों के गाँव में। उस समय उनके गाँव-देवता का पूजन हो रहा था। सुंद्रा के बाप ने गालियाँ दी थीं। ''वे पूजा कर रहे हैं अपने मन से। गांव के भले के लिए 'सात बहनों' की पूजा कर रहे हैं। हमारे आखन पर्व में, सार्जोम बाह में क्या वे शामिल होते हैं? वे पूजा कर रहे हैं और तुम तीर-धनुप लेकर हाजिर! अरे जो जिस गोत का, जिस पर्व को मनाता है, जिस गाँव में रहता है, उसी का दोप अपने सर पर लेता है। तब वहाँ जाने से क्या फ़ायदा?'

सुंद्रा ने कुछ नहीं कहा, लकड़ी चीरता रहा। फिर बेहद शांत स्वर में बोला, "सुनो आपूँ, हाट में जाकर बैठे रहने से क्या खुरपी-कुदाल-टांगी की मरम्मत संभव है?"

"खुरपी, कुदाल, टाँगी-बेलचे वगैरह हमेशा से वहीं बनवाये जाते हैं।"

बाप की समझ में कुछ नहीं आया, बेटा आख़िर कहना क्या चाहता है?

"तब क्या खुरपी, कुदाल. टाँगी से कह दूँ—तुम खुद जाओ और मरम्मत करा के चले आओ?"

"नहीं आपूंग, तुम समाज को लेकर बैठे रहो। जरा कहकर तो देखो। समाज क्या कहता है!"

"तू क्या कहता है ?"

"मैं कहता हूँ कि सार्जोम-हाट में सातों गाँवों के लोगों ने एक कुम्हार को बसाया है। हम क्यों कुम्हार-लुहार नहीं बसा सकते ? इसी हाट में धान-चावल-सरसों बेचकर वहीं से सभी कुछ ख़रीदते हैं ।"

"ज़मीन देकर बसाऊँ ?"

"तुम हमारे समाज के प्रधान माझी हो । जो उचित समझो, करो । मैं क्या कहूँ ?"

"वे आयेंगे ?"

"उन्हें ज़मीन देकर बसाया गया है, वरना दिनमनि कुम्हार हाटतला में क्यों बैठता ? कहकर तो देखो ।"

"नहीं, ज़रा सोच लूँ । पाँच लोगों से बात तो कर लूँ ।"

सुंद्रा को भूख लगी थी। बैठ गया खाना खाने । बथुए का साग, भात, बैंगन, ख़रगोश का मांस, करमचा का आचर । खाते-खाते माँ ने पूछा, "कैसा रहा पर्व ?"

"अब क्या बताऊँ, आयु ? पहले कबूतर, फिर पाठे, फिर मुर्गे की बलि दी । उनके पुरोहित सब करते हैं। खून से सने चावल अपने-अपने घर ले गये सब लोग ।"

"क्यों ?"

"ऐसा ही रिवाज है । वे चावल घर में रहें तो विपत्तियाँ नहीं आतीं । उसके बाद सिंदूर में लिपटा एक अंडा थान के सामने तोड़ा गया । यही देख-दाखकर मैं चला आया ।"

सुंद्रा की पत्नी सोमी बोली, "खाना-पीना कुछ नहीं ?"

"है । पाटे के सिर के साथ खिचड़ी, मांस । सब खायेंगे । फिर क्या हुआ, जानती है ?"

"नाच-गाना ।"

"ठीक । थोड़ा नमक दे ।"

सोमी ने नमक दे दिया। कहने लगी, "गोहालि का बेड़ा ठीक कर दो, वरना बाघ फिर से गाय को उठा ले जायेगा ।"

"बाघ नहीं, लकड़-बग्घा होगा ।"

"नहीं, नहीं, गुल बाघ है। लकड़बग्घे क्या पेड़ पर चढ़कर कूदते हैं ?"

"ठीक है, बांध दूंगा।"

मां बोली, "आम के पेड़ की डालें काटनी हैं।"

ये पेड़ सुंद्रा के प्राण हैं। बोला, "मां, अभी तो फल लगने शुरू हुए हैं। कुछ साल रहने दे।"

"तेरे पेड़ के लिए क्या अपनी गाएँ गवां दूं ?"

"लोहे का बेड़ा लगा दूंगा।"

लेकिन लोहे का बेड़ा नहीं बना। मज़बूत शाल की डालों से मज़बूत बेड़ा बना। घर के भीतर मिट्टी की दीवार। छत बनी डालियों से। तमाम ढँक दिया गया। सुंद्रा की गोहालि देखने सभी आये। तारीफ़ भी की। इन हृष्ट-पुष्ट गाय-बैलों को बाघ लेने आये, यह दीगर बात है। ज्यादा नुक़सान तो चीते पहुँचाते हैं। जो भी हो, इस घर में से गाय-बैल हटाना सम्भव नहीं।

इस सारे ताम-झाम को छोड़ वह लखा सोरेन और आटोआरी मुर्मू के साथ पहाड़ पर चला गया। वहां चार दिन रह और सब-कुछ देख-सुन कर वापस आया तो कहने लगा, "सबको बुलाओ।"

"क्यों ?"

"हम सिर्फ खेसारी बोते हैं और वे धान पकते-पकते चना, अरहर, मूंग सभी दालें बोते हैं। हम भी और दालें बोयेंगे। फ़सल बढ़ाना कोई ख़राब बात नहीं है। कुछ भी नहीं ख़रीदेंगे।"

"अभी नहीं। शिकार-पर्व पर सब मिलें, तब यह बात कहना। तुम क्या यही देखने गये थे ?"

"हाँ, हाँ, दूसरे पहाड़ियों से भी कहूँगा।"

"वह तो कहना ही होगा। पर समाज जुटे बगैर कैसे कहोगे ?"

"कहूँगा, हम देखकर आये हैं, समाज से यही कहूँगा।"

"तू कह सकता है। मोटे तौर पर हम यहाँ तीन जातियाँ हैं। हम पहाड़ियों और माल-पहाड़ियों से सलाह करेंगे। वे भी हमसे सलाह लेंगे। इसी तरह काम चलता है।"

"ज़मीन तो बहुत है। हम और ज़मीन दख़ल कर लेंगे?"

"ठीक है, कर लेंगे।"

"दिनमनि कुम्हार के बारे में भी बात होगी। उसने पता नहीं, क्या किया है? कहता है, जात चली गयी है। मैंने कहा, हम जात-पात नहीं मानते। दोष-गुन का विचार पाँच लोग मिलकर करते हैं। पर कुछ ज़मीन दखल करनी ही होगी। उसके बाद जिसे जो करना हो करे। धान-चावल के दाम होते हैं। खाएँ, हाट में बेचें। कितना चाहिए?"

शिकार-पर्व के बाद पंचायत बैठी। सारी बातें हुईं। बूढ़े सना किसकू ने कहा, "बाहर से कुम्हार लाओगे तुम? हमारा समाज एक है, विचार एक जैसे हैं। बाहर से आने वाले के न जाने कैसे हों?"

"अगर कोई गड़बड़ हुई तो हम संभाल लेंगे।"

फिर देर नहीं लगी। दिनमनि कुम्हार आ गया। कुम्हार-शाला खुल गयी। शुरू में उसका मन नहीं लगा। गहन जंगल के बीच, नदी के किनारे-किनारे, झरनों के बीच शस्य-श्यामल ग्राम। ये लोग खेतों में काम करते हैं, शाम ढले गीत गाते हुए लौटते हैं। तीज-त्योहार पर नाच-गा कर मस्त हो जाते हैं।

दिनमनि ने अपने भाई रतनमनि से कहा, "इनमें जात-पाँत नहीं है, ये कैसे आदमी हैं?"

रतनमनि की उम्र कम है, पर उसमें अक़्ल ज्यादा है। बोला, "जात-पाँत से क्या होता है? अनजाने में चमार का अन्न खाया, तो कौन-सी विपत्ति आ गयी थी! इस तरह काम नहीं चलता। धान मिलता है, चावल मिलते हैं, डाला-भर चिवड़ा-मूढ़ी खाते हो। ज़िंदगी में इतना देखा था कभी?"

दिनमनि की पत्नी, रतनमनि की पत्नी—सब बड़े खुश थे। कुम्हार थे, अब लुहार का काम करते हैं। तीर के फलक, बरछे व भाले के फलक बनाते हैं। कुदाल, गैंती, खुरपी बनाते हैं। इतने काम के आदमी को भला कौन सम्मान न दे? दूध, मछली, दही, मांस जिसके पास जो है, उसे लाकर देता है। लौकी, कुम्हड़े, बैंगन, कच्चू, मिर्ची वगैरह सभी उन्हें दिये जाते हैं। गाय रखनी है, रखो। धान के लिए ज़मीन? वह भी गाँव वाले देते हैं।

गाय-भैंस का भी बंदोबस्त करते हैं। इतना सुख किसे मिलता है ?

लेकिन दिनमनि अपने साथ सभ्यता और उसके साथ पनपता लालच भी लाया था। वह बीच-बीच में कहल गांव, संग्रामपुर के चक्कर लगा आता था। अपना सामान लाने या मजूर ढूंढने के लिए। उसके बच्चे बड़े हैं, लड़की गोद में। रतनमनि की लड़की सात बरस की हो गयी है। वर तलाशते हुए लगता है कि आठ बरस की हो जायेगी। नाम के साथ पहले ही एक बार कलंक लग चुका है यहां आने का, सो वर तलाशने के लिए दूर जाना होगा।

सुंद्रा बोला, "तू कहां-कहां जाता रहता है ?"

"मैना के लिए वर ढूंढने के लिए जाता हूं।"

"मैना के लिए ? इतनी छोटी बच्ची की शादी करेगा ?"

"हमारे यहां ऐसा ही होता है।"

"वही, जो हमारे बच्चों के संग खेलती है ?"

"तुम्हारे यहां के रीति-रिवाज अलग हैं।"

"ठीक है। लेकिन है कौन-सा समाज अच्छा ?"

"जो जिसे ठीक समझे वही अच्छा। अपनी-अपनी बात होती है।"

"तुम्हारे समाज में दो गंदी बातें हैं।"

"कौन-सी रे ?"

"तू अच्छा कारीगर है। तेरा भाई भी जानकार आदमी है। तूने यह जात-पाँत की बात हमारे गाँव में फैलायी है--मुझे इसका मतलब नहीं समझ आता। यह बुरी बात है।"

"इसी का नाम जाति-विचार है।"

"यह जाति क्या होती है ? हां, गोत्र हो सकता है। पर जाति क्या अलग होती है ?"

"हां, रे !"

"और देखता रहा हूं कि तू इतनी छोटी बच्ची की शादी कर रहा है। उसे दुनिया की क्या समझ है ? यह भी बड़ी बुरी बात है।"

"हमारी जाति का यही नियम है।"

"तेरा समाज क्या ऐसा है ?"

"तू समझेगा ?"

"ज़रूरत नहीं समझने की। तू ही समझता रह।"

मैना के लिए वर ढूंढ़ते-ढूंढ़ते दिनमनि को एक अद्भुत ख़बर सुनने को मिली। मराठे-मुर्शिदाबाद जाना चाहते हैं लूट-पाट करने के लिए। अगर राजमहल की पहाड़ियों में से उन्हें कोई सीधा रास्ता बता दे तो वे हाथों-हाथ एक सौ-एक रुपये देंगे। चाँदी के खनखनाते रुपये।

सर घूम गया दिनमनि का। उसने रतनमनि को बतायीं यह बातें।

इन सालों में रतनमनि भी बदल गया है। बोला, "तुम्हें किस चीज़ की ज़रूरत है ? धान की कोठारी में धान है, गोहालि में गाय हैं, दस गाँव में इज़्ज़त है। अब और क्या चाहिए ?"

"लड़की की शादी नहीं करनी क्या ?"

"देखो, वह तो होगी ही।"

"रुपया मिलने पर हम यहाँ से जा भी सकते हैं।"

"मैं नहीं जाता यहाँ से।"

दिनमनि बोला, "सुंद्रा का बाप ज़रूर ऐसे रास्ते जानता होगा। वह सब जानता है।"

"भैया, ऐसा कुछ मत करो। ये विदेशी अगर आ गये तो बाक़ी रास्ते भी बन्द हो जायेंगे। यह राजाओं की लड़ाई है। तुम क्यों पगलाते हो ?"

दिनमनि ने कोई बात नहीं सुनी। वन हैं, जंगल हैं, भयानक पहाड़ियाँ हैं। नहीं तो वह खुद ही रास्ता ढूंढ़ लेता। बाघ, भालू, हाथी का भी डर है।

वह पहुँचा सुंद्रा के बाप के पास। सुंद्रा के बाप ने सब-कुछ सुना। बोला, "तू एक सौ रुपया लेगा ?"

"तुम्हें भी दूंगा।"

"अच्छा। अच्छी बात है।"

"क्या कहते हो ? तुम जानते हो वह रास्ता ?"

"ये विदेशी हैं कौन ?"

"दूर देश के रहने वाले हैं।"

"कहाँ जाना चाहते हैं ?"

"मुर्शिदाबाद।"

"दिन के उजाले में नदी पार करके क्यों नहीं निकल जाते ?"

"लूट करने आये हैं।"

"तभी तो दिन में नहीं निकलेंगे।"

"तुम तो सब-कुछ समझते हो।"

"ये बातें भूल जाओ।"

"क्या कहा ?"

सुंद्रा के बाप ने धीरे-धीरे रुक-रुककर कहा, "तू इन बातों को भूल जा। तू जो कहता है, वह बेईमानी है। लूटने को डकैत आ रहे हैं। डकैतों को रास्ता दिखायेगा, रुपये लेगा, मुझे भी देगा। ऐसी बातें कहने वाले का सिर संथाल काट कर फेंक देते हैं। तेरा सिर अभी तक नहीं काटा, पता है ?"

"अरे, अरे ! माझी सुन तो।"

"सुन लिया। तेरा सिर क्यों नहीं काटा, पता है ? इसलिए कि तुझे बुलाकर मैंने यहां बसाया है। तुझसे कहा था कि तू निर्भय होकर रह। तुम्हारे जान-माल की रक्षा की ज़िम्मेदारी हमारी है। तभी तुझे नहीं मारा। लेकिन तू बेईमान है। तू अब यहां नहीं रहेगा।"

"तब कहाँ जाऊँ ?"

दिनमनि डर के मारे रोने लगा। सुंद्रा कठोर आंखों से देखता हुआ धनुष का सहारा लेकर खड़ा था।

सुंद्रा का बाप बोला, "रोता है ?"

कुछ रुककर बोला, "जाओ, ये बातें भूल जाओ।"

"मेरे भूलने से क्या तुम भूल जाओगे ? फिर कभी ऐसी बात नहीं कहूँगा।"

"जाओ, घर चले जाओ। सुंद्रा का हाथ खुजला रहा है, मेरा भी हाथ खुजला रहा है। जा, भाग जा !"

दिनमनि भागता हुआ वहाँ से चला गया। दूसरे दिन सुंद्रा दाव पर धार धरवाने आया। रतनमनि से बोला, "कल तेरा भाई खूब बचा। अब

यदि उसने फिर कभी ऐसी शैतानी की तो बचेगा नहीं। तू क्या कहता है, क्या तूने भी सुना है ?"

"मैंने तो उसे बहुत बार रोका है।"

रतनमनि ने दाव हाथ में लेते कहा "ज़रा पानी पिलाना होगा इसे। तू बैठेगा ?"

"रुकता हूँ। भाथी की आग और तुझे काम करते देखने में अच्छा लगता है।"

रतनमनि ने दाव को तपाकर लाल किया और उस पर पानी छिड़का। लोहा जितना पानी पीयेगा, उतना बढ़िया बनेगा। उसे उसने फिर गर्म किया, नेहाई पर रखकर पीटा और उस पर पानी डाला। फिर छेनी से काट कर रेती से घिसता रहा।

काम करते-करते रतनमनि बोला, "मना किया था पहले भी। ठीक से रह रहे हैं, आटा गीला मत करो। वह मैना से बहुत प्यार करता है। इसीलिए शायद......।"

"यह अच्छी बात नहीं है।" काफ़ी सोचकर सुंद्रा बोला, "उसे गाँव में इधर-उधर ज्यादा मत घूमने दो। तेरी मैना की शादी अच्छी तरह से हो जायेगी। कितना काम सीख लिया है उसने ! हमारी लड़कियों के साथ घूमती है।"

दिनमनि की पत्नी ने चाय और मूढ़ी के लड्डू लाकर रख दिये। बोली, "तुम खा लो। बहू ने खा लिया है, लड़कियों ने खा लिया, बाप ने नहीं खाया।"

"दो। तुम्हारी लाल गाय जंगल में दूर तक जाती है। गुल बाघ देख लेगा तो मार देगा। सम्भाल कर रखो।"

"बड़ी पाजी है। दूर-दूर तक चली जाती है।" रतनमनि ने बाद में भाई-भाभी से कहा, "ये बेईमानी, झूठ-झाठ नहीं जानते। जो कुछ कह आये हो फिर कभी मत कहना। जंगल में काट कर फेंक देंगे तो कौन देखने वाला है ? फिर ये जंगल भी भले हैं। मेरा मन खूब लग गया है यहाँ।"

"मेरी बेटी की शादी ?"

"हाट में नाई से कह दूंगा। सुंद्रा के बाप से भी कहूँगा। नाई, कुम्हार—

सब तो ज़रूरी ही हैं यहाँ।"

रतनमनि ने सुंद्रा से बात की। बात सुन कर सुंद्रा बोला, "देखूंगा।"

"ज़रूरत नहीं है क्या?"

"है। पर बाहर के लोगों को बुलाकर बसाने से पहले समाज की बातें सुनना ज़रूरी हैं। मुझमें अब हिम्मत नहीं है।"

यह सब गड़बड़ दिनमनि के कारण हुई है। यह बात रतनमनि को अच्छी तरह से समझ आ गयी।

कहने लगा, "डोम, नाई, धोबी, कुम्हार---इन सबों के गांव में बसने से हमें गाँव के बाहर जाने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी।"

"मैं इस बारे में कुछ नहीं कह सकता।"

लेकिन एक अद्‌भुत तरीक़े से समस्याओं का समाधान हुआ।

दिनमनि ने अपनी समस्या का समाधान खुद ही किया। वह यह नहीं जानता था कि इतिहास हमेशा कितने स्तरों पर काम करता है। राजे-रजवाड़ों के इतिहास में घटनाएँ तेज़ी से घटित होती हैं, जबकि साधारण मनुष्य के इतिहास में हरेक घटना के गम्भीर परिणाम होते हैं। विदेशी बंगाल लूटने आये थे, यही रजवाड़ों का इतिहास था।

उन्हें रास्ता बताने के लिए निकला दिनमनि। पहाड़ पर, जंगलों में कहीं-न-कहीं रास्ता है, पर है कहाँ? रास्ता है, पर वे बताते नहीं। रुपये भी नहीं लेते। वह आदमी इस पहाड़ी अंचल में ठेकेदार के यहाँ काम करता है। उसी ने दिनमनि को यह बात बतायी थी। रास्ता है, पर यह लोग बताते नहीं हैं। वह अगर रास्ता ढूंढ़ सके तो एक सौ-एक रुपया मिल सकता है। बहुत सारे रुपये। मैना की शादी की बात भी दिनमनि भूल गया है। अच्छी जगह पर धान के खेत और सालाना मालगुज़ारी छह आना फ़ी बीघा। एक सौ-एक रुपये की क्रय-क्षमता बहुत है। अच्छा घर होगा। ज़मीन होगी। हल-बैल, गाय-गोरू, आम-केले और नारियल के बागान होंगे। फिर भी बच ही जायेगा। मज़े रहेंगे गाँव में।

रतनमनि का मन जंगल में लग गया है। दिनमनि अभी भी पुराने दिनों की पुरानी दुनिया को नहीं भुला पाया है। एक सौ-एक रुपये! दिनमनि जानता है कि इतने रुपयों से ईंटों का दालान बनवाया जा सकता है।

रास्ते का पता लगाना होगा। रास्ता ढूँढ़ेगा वह एक पोटली सरसों के सहारे। सरसों से बने रास्ते को देखकर वह विदेशियों को रास्ता बतायेगा।

टट्टू पर बैठकर वह गया था रास्ता ढूँढ़ने। फिर निकल गया पहाड़िया-बसतिया पहाड़ों की तरफ़। पहाड़िये उसे भयानक संदेह की निगाह से देखेंगे, यह दिनमनि नहीं जानता था।

इसके बाद उसकी कोई ख़बर नहीं मिली। दिनमनि की पत्नी के रोने-पीटने पर कुछ दिन बाद सुंद्रा और रतनमनि दिनमनि को ढूँढ़ने निकले। खोजते-खोजते उन्हें तीन पहाड़िया युवक मिले। सुंद्रा को देखते ही वे दूर से चिल्लाये, "साथ में कौन है ?"

"कुम्हार का भाई।"

"कुम्हार ? कौन कुम्हार ?"

"गाँव का नया बाशिंदा।"

"कुम्हार कहाँ है ?"

"उसे ही ढूँढ़ रहे हैं।"

"कितने दिन से नहीं मिला ?"

"पाँच दिन हुए।"

"घोड़े पर बैठकर आया था ?"

"हाँ।"

युवक आगे आये। धनुष संभालते हुए बोले, "कुम्हार था, यह नहीं जानते। कुम्हार का आदर हम भी करते हैं। पर आदमी अच्छा नहीं था। रास्ता ढूँढ़ने आया था, चोर-रास्ता। रास्ता ढूँढ़ने पर उसे कोई रुपया दे रहा था। उसमें से वह हमें भी रुपया दे रहा था।"

रतनमनि का हलक़ सूख गया। वह बोला, "फिर ?"

युवक सुंद्रा से बात करते रहे, "तेरे बाप ने जो उससे कहा था, उसने वह बात भी बतायी। फिर कहने लगा कि वह तो बेवकूफ़ है। रुपयों का मोल नहीं समझता। सुंद्रा, ऐसी बातें सुनकर सिर पर खून चढ़ गया।"

सुंद्रा धीरे से बोला, "तीर मार दिया ?"

"हाँ, तीर मार दिया।"

"कहाँ ?"

"वहाँ। यह आदमी उसका भाई है ?"

सुंद्रा ने रतनमनि के कंधे पर रखा अपना हाथ नीचे गिरा दिया। फिर कहने लगा, "यह आदमी मेरी ज़िम्मेदारी पर आया है। समझते हो ?"

"समझते हैं।"

"इसके भाई को...घोड़ा ?"

"ले जाओ।"

पहाड़िये उन्हें रास्ता दिखाते हुए ले चले। ऊँची घासों के बीच दिनमनि औंधा पड़ा था। घोड़ा बगल में चर रहा था। एक युवक बोला, "सरसों की पोटली ले आया था। सरसों डालकर निशान बनाता और फिर रास्ता दिखाता।"

सुंद्रा बोला, "भाई का क्या करेगा ?"

"क्या करूँ ?" रतनमनि असहाय था।

"हमारे समाज में अपघात से मरने पर कोई संस्कार नहीं करते। जंगल में फेंक देते हैं। नहीं तो अमंगल होता है।"

आत्मघाती के लिए कोई शास्त्रीय विधान नहीं होता, यह रतनमनि भी जानता था। बिना अनुष्ठान के जलाया भी नहीं जा सकता। सुंद्रा सहायता करने से रहा। भाई को कैसे ले जायेगा अकेले ?

"क्या करेगा ?"

"ढंक दूँ, बस।"

पेड़ की टहनियों और पत्तों से रतनमनि ने भाई को ढाँप दिया। भविष्य में अगर कभी पता चला तो वह कुछ पूजा-पाठ करा लेगा।

घोड़े को लेकर वह और सुंद्रा लौट गये। सुंद्रा बोला, "तेरा भाई हमेशा अपने समाज के लोगों की तरह काम करता था। तुम्हारे समाज में सब-कुछ गंदा है। मेरे बाप ने बचाया सो वह बेवकूफ़ कहलाया। अच्छा कारीगर था। इतना सम्मान दिया। धान से कोठरी भर दी। कुछ भी याद नहीं रखा उसने।" रतनमनि ने आँखें पोंछीं।

"करम के पेड़ के नीचे तेरे बदन पर हाथ रखा है मैंने, तेरी ज़िम्मेदारी भी ली है। यदि तू धर्म पर चलता रहा तो तुझ पर वार होने से पहले मैं अपनी छाती आगे कर दूँगा।"

"अच्छा ।"

"याद रखना ।"

सुंद्रा चला गया ।

फिर विदेशी आये और आते गये । धान नही पैदा हुआ । घर जल गये । औरतों की इज़्ज़त लुटी । रजवाड़ों के इतिहास के साथ जन-इतिहास का मिलन हुआ । लोग भागते रहे । भागने पर भी निष्ठुर विदेशी पीछा तो करेंगे ही । सो चलो नदी के पार। विदेशी घोड़ों की पीठ से नहीं उतरते। नदी पार करके वे नहीं आयेंगे। चलो पद्मा पार कर, भागीरथी पार करके। ब्राह्मण-पंडित भागे पोथी-पत्रा लेकर। सुनार भागे तराजू-पल्ला लेकर।

भागे दूकान उठाकर बनिए कितने।
भागे पीतल उठाकर ठठेरे कितने ।।
चाक-मिट्टी ले भागे कुम्हार व कमेरे ।
मछली व जाल ले भागे मछेरे ।।
जितने भी लोग थे गाँव में भाग गये ।
विदेशियों के भय से डर भाग गये ।।
लोग भागे चारों दिशाओं में जहाँ-तहाँ ।
छत्तीस जाति के लोग भागे यहाँ-वहाँ ।।

सभी ज़्यादा दूर नहीं भाग पाये । जो जंगल के इस पार आ गये, उन्हें संथालों के गाँव में शरण मिली । विदेशी चले गये, पर डर बना रहा । इसीलिए धीरे-धीरे कुम्हार-कमेरे, डोम-तेली--सब यहीं रह गये । विदेशियों के हंगामे के बीच ही गाँवों में एक अन्य समाज ने प्रवेश किया । "आओ, रहो, कुछ ज़मीन दखलिया लो । लेकिन गाँव में हमारे मुखिया का शासन मानना पड़ेगा । बेईमानी नहीं, झगड़ा नहीं, झूठ नहीं ।"

"राजा कौन है ? शासक कौन ?"

मुखिया लोग हँसे । "कौन राजा ? कौन शासक ? हम किसी को कर नहीं देते । सूबेदार ? कोई सूबेदार आज तक हमारी तरफ़ आँख नहीं उठा सका । धान के बदले सूत और नमक लाते हैं । बस, बाहर की दुनिया से सम्पर्क ख़त्म । झुंड में चलते हैं । तीर-धनुष हमेशा के साथी हैं ।

राजा-जमींदार दुर्गापूजा में हमें, पहाड़ियों को, फल-मिठाई-कपड़े और पगड़ी भेज सम्मान देते हैं। संबंध अच्छे रखते हैं।"

"तुम किसके अधीन हो ?"

"धर्म के। अपने देवता के।"

"ठीक है, मान लिया। अरे, प्रेम से तो लकड़ी की पुतलियाँ वशीभूत हो जाती हैं, फिर ये तो दुखी कष्ट के मारे लोग हैं।" गाँव-गाँव में बसे डोम-चमार-कुम्हार समझ गये कि इससे शांतिमय जीवन उन्हें कहीं नहीं मिलेगा। गाँव में रोज़गार करने वालों को इतना सम्मान कभी नहीं मिलता। कोठे धान से भर गये। गोहाल में गायें। नये साल के पूस-पर्व में मनसा की पूजा संथाल देख गये। बोले, "यह अच्छी बात हुई।"

कड़ाके की सरदी। फ़रवरी का महीना। दीए में महुआ के तेल की बत्ती जलाओ, शाम ढलने पर। दूर पहाड़ पर हाथी उतरे। उनकी तीखी तेज़ आवाज़ सुनायी पड़ी। बाघ का गम्भीर गर्जन भी। नवजात शिशु पैदा होने पर थाली बजने की आवाज़ सुनायी दी। लड़का हुआ है, लड़का।

गाँव में सभी खुश हो गये। सुंद्रा मुर्मू के बेटा हुआ है।

2

1750 में सुंद्रा मुर्मू के घर तिलका पैदा हुआ। उसके साल-भर का होते-न होते पहाड़ से हाथी फिर उतरे। हाथी तो हर साल उतरते हैं। लेकिन इस बार वे पगडंडी पकड़ कर पहाड़िया गाँव में चले गये। बस, धान के सारे खेत तहस-नहस हो गये।

पहाड़िया गाँव का प्रधान आया सुंद्रा के गाँव। गाँव के मुखिया माझी, सुंद्रा के बाप के पास। सुंद्रा के बाप ने उसे बिठाया और गुड़ तथा पानी दिया। पहाड़िया दो मुर्गियाँ लाये थे। वे उसने सोमी को दे दीं। फिर बोला, "अब कहो।"

"तुम ठीक से हो। कुछ पता है ?"

"क्यों, क्या हुआ ?"

"हाथियों के उपद्रव से रात-भर जगते हैं। दिन को पहरा देते हैं। बड़ा जंजाल है यह, नहीं ? झुंड-के-झुंड हाथी उतरते हैं तो बस उतरते चले आते हैं। ऐसे समय जब पहाड़ बाँस से लदे हैं, धान के खेत में क्यों उतरते हैं ?"

"पूजा-पर्व में कोई भूल तो नहीं हुई ?"

"नहीं।"

"तब ?"

"तुम्हारी ज़रूरत है। एक साथ हाथी भगायेंगे।"

"ठीक है। ज़रूर चलेंगे।"

"यही कहने आया था।"

"यह तो करना ही पड़ेगा। आग बुझाने में, हाथी भगाने में हम तुम्हारे और तुम हमारे साथ हो हमेशा से।"

हाथी भगाने गये थे वे। जाना ही पड़ता है। जंगल के समाज का पुराना नियम है। जो विपत्ति सभी की है, उसका मुक़ाबला सब को मिल कर करना होगा। वैसे जो जिसका मन है, करे। हाथी धान के खेतों में उतरे थे। अँधेरे में मशालें चमक रही थीं। मशालें देख कर दाँतुल हाथी बिगड़ जाते थे। सवेरे होते-होते पता चला कि तीन मृतकों में एक सुंद्रा का बाप था। लाश खटिया पर उठायी गयी और उसे एक गहरे गड्ढे में फेंक दिया गया। किसी भी अपघात से हुई या अस्वाभाविक मृत्यु से संबंधित कोई नियम-आचार नहीं है।

इस घटना ने सुंद्रा के गाँव के सभी लोगों को रुला दिया। गाँव का मुखिया माझी था, सुंद्रा का बाप। उसका अपना खेत था, गोहाल में गायें थीं। मृत्यु वाले दिन वह अपने पोते को लेकर बैठने के लिए मचान बाँध रहा था। 'भाई, यह हमारे समाज का नियम है। यह करना ही होता है,' कहते हुए वह सुंद्रा-सरीखे मस्त युवकों को शिक्षित करता था। बाल सफ़ेद थे, पर बदन ऐसा जैसे पके शाल को काट कर बनाया गया हो। ऐसा नामी-गिरामी था वह। अगर वह अपने घर में मरता तो रीति के अ... गोत्र वाले श्मशान में उसकी समाधि बनती। लेकिन वह मरा ...

के नीचे आकर—अपघात से।

सुंद्रा की माँ रोते-रोते चुप होकर बोली, "गाँव में पाप घुस आया है।"

सोमी की माँ एक दिन आयी और उसके पास बैठकर बोली, "वे शूरवीर थे और वैसी ही उनकी मौत हुई। वे क्या घर में रोग से खटिया पर मरते? कितना कुछ छोड़ गये हैं वे। तुम्हारी दुनिया है, तुम संभालो। खुद को संभालो। यह जो उनका पोता है, इसे संभालो। बालों में ज़रा तेल डालो, कुछ खुद भी खा लो।"

"मन नहीं करता।"

"तब हम कहाँ जायेंगे?"

"क्यों?"

"तुम माझी की पत्नी थीं। अब माझी की माँ हो। जिसका बेटा गाँव का मुखिया है, उसकी माँ अगर इतनी कमज़ोर रहे तो कैसे चलेगा?"

"नहीं चलेगा तो?"

सबने कहा--"बड़ी दुख की बात है, वे मर गये। अब ज़रूरी है, उनके छोड़े हुए काम पूरे किये जायें। आदमी पैदा हुआ है तो मरेगा भी। जो अपने हैं, वे दुखी होंगे। ये सब जीवन के नियम हैं। सरदी-गरमी-बरसात नियम से आते हैं, नियम से जाते हैं। ऐसा ही नियम है सब का। अब संसार के नियमों के अनुसार ही सब-कुछ देखो।"

परभू हेमब्रम की बूढ़ी माँ ने कहा, "काम पर जाओ। यही दवा है। इसके जैसी कोई और दवा नहीं। अरे सोमी! तू भी क्या है, इतना छोटा काम भी नहीं कर सकती?"

सोमी के दालान में उड़द सूख रही थी। बूढ़ी आयी और उसने बकरी की रस्सी खोल दी बोली, "खा, खा, उड़द खा ले।"

सुंद्रा की माँ दरवाज़े से टिक कर बैठी थी। यह देख कर वह लाठी लेकर दौड़ी। बकरी भगा कर लगी चिल्लाने, "क्या रे, घर में कोई नहीं? तुम सब कहाँ मर गये? परभू की माँ पागल हो गयी है। सूखती हुई उड़द पर बकरी खोल दी।"

परभू की माँ ने बकरी बाँध दी। झाड़ू से बिखरी दाल को बटोरा।

फिर तिलका को उसकी गोद में देकर बोली, "हाँ, अपना उड़द, अपना मामला। अब बच्चे को देख। सब छोड़ कर अगर गुप-चुप आसमान देखती रहेगी तो देखना, मैं क्या करती हूँ?"

"नहीं, समझ गयी।"

फिर सब सहज हो गया। सुंद्रा भाग कर बचा। फिर माँ और सोमी ने धान कूटा। माँ ने फिर कहा, "तुष रखने के लिए और एक डोल बना ले।"

"एक अच्छा डोल ला दूँगा।"

"कहाँ से?"

"विदेशियों के डर से जो लोग भागे थे, वे डोम हैं। उस गढ़े के पार रहते है। बाँस चीर-चीर कर डोल-डलिए, छाज और चटाईयाँ बनाते हैं। बहुत अच्छा समाज है उनका! हम लोगों की तरह उनके लड़के-लड़की सब काम करते हैं। हमारी तरह ही मुर्गी पालते हैं। मर्द हमारी तरह शिकार करते हैं, लड़ना जानते हैं।"

"तीर से?"

"नहीं, वे नेजे और लाठी से लड़ते हैं।"

"हाँ, तरह-तरह के लोग होते हैं।"

"ख़तरनाक धानुक आ रहे हैं। वे व्याध हैं। शिकार करते हैं। भेड़-बकरी पालते हैं। अरे, सीखने की कितनी ही बात है। यह आयु सीखने की है। भेड़ के बाल निकाल कर बाज़ार में बेचते हैं। कंबल बनाने वाले ख़रीदते हैं! कंबल बुनते हैं। जब रुपये मिलते हैं, चावल ख़रीदा और खूब खाया...बस।"

"फिर?"

"ये धानुक हैं न, यह शिकार करते हैं।"

"तू ज़रा सोच ले। इस तरह के लोगों के साथ हमारा रहना हो सकेगा?"

"खूब होगा। यहाँ रहें, कर-खज़ाना क्या होता है, उसका जंजाल ही नहीं। विदेशी लूटेंगे नहीं। मेहनत करो, खाओ। हाट में जाकर अपना सौदा बेचो। हम देखने भी नहीं जायेंगे।"

"सब बाहर के लोग हैं!"

"इनके यहाँ रहने से कोई डरने की बात नहीं। दिनमनि वाली बात सभी जानते हैं।"

"कैसे जानते हैं, सुंद्रा ?"

"ये सारी बातें हवा में उड़ती हैं।"

"हाँ, बातों के पर होते हैं।"

तिलका को सीने से लगाकर धीरे-धीरे सुंद्रा की माँ स्वाभाविक होती गयी।

लड़का बड़ा होता गया दिनों-दिन। बाप संथाल-समाज का मुखिया है। और तिलका जिस गाँव में बड़ा हुआ वहाँ अब कुम्हारों, कमेरों, डोमों, तेलियों और धानुकों के भी दो-एक घर हो गये।

सुंद्रा के लोग सरसों उगाते थे। कभी सरसों पिसाते थे। नहीं तो बेच देते थे। तेल का काम महुए के तेल से चलता था। महुआ ही उनकी लक्ष्मी है। फूल की पंखुड़ियाँ भून कर खा लो। पूरे फूल को पका लो। किशमिश सरीखा मीठा होता है। महुए के बीज सुखा लो। कोल्हू में पीस कर तेल निकाल लो।

कुम्हारों की बूढ़ी ने सुंद्रा की माँ से पूछा, "कितने प्रेम से महुआ का तेल खाती हो। महकता नहीं है ?"

सुंद्रा की माँ हँसी। बोली, "खाकर देखो।"

खाने-पीने से पहले मन में कितनी शंकाएँ थीं, सब खाते ही दूर हो गयीं। घर में बनाओ, खाओ या बत्ती जलाओ। कुछ दिनों बाद घर-घर में पिराई शुरू हो गयी।

रतनमनि कहने लगा, "पहले नहीं जानता था। तुमसे सीखने को बहुत-कुछ है, अब दिखायी दे रहा है मुझे।"

सुंद्रा बोला, "हम जो कुछ करते हैं, खुद के लिए करते हैं।"

"चिवड़े-मूढ़ी क्यों नहीं बनाते ?"

"सवेरे पानी-भात खाकर काम पर जाते हैं। दोपहर को गरम भात। रात को फिर गरम भात। अब चिवड़ा कौन कूटे और मूढ़ी कौन भूने ? औरतें भी तो काम करती हैं।"

"बेच सकते हो।"

"क्या होगा ? मुझे जब मिट्टी में गाड़ देंगे और तुझे जब जलायेंगे तो क्या हम पैसे साथ में ले जायेंगे ? वह सब छोड़ कर सिर्फ़ एक कटोरा चाहिए लोहे का।"

"कटोरा...अचानक क्यों ?"

सुंद्रा हँसा और बोला, "आयु की बात ही कुछ और है। नये कटोरे में तेल गरम करके बच्चे को लगायेगी। नये लोहे के गुण से बच्चे का भला होगा। आयु क्या तुमसे कुछ लेकर यह सब सीखती है ? लड़के का इतना आदर ? तुम तो लड़कियों से ज्यादा लड़कों का सम्मान करते हो।"

रतनमनि की पत्नी बोली, "माझी देवर कुछ नहीं समझते। तुम्हारा बाप मरा, देवर, तब इतनी दुखी थी वह। बच्चे को लेकर सब भूल गयी है। तभी तो ज्यादा प्यार करती है।"

दादी के आदर-प्रेम से तिलका बड़ा हुआ। दादा मरा था 1750 में। वह एक बरस का रहा होगा। गड़म बाबा, उसके दादा के पास एक धनुष था। एक बड़ा-सा बाँस का गिलास भी था, जिसमें गड़म बाबा आमानी-शराब पीता था। वह गिलासनुमा खोल उसका आपूंग है, जिसे सुंद्रा हाट से ले आया था।

जब बड़ा हो जायेगा तो उस धनुष को एक दिन तिलका लेगा। उसी खोल में आमानी पीयेगा।

अभी तो बस सारे दिन नाचते रहो, कठबिलार और पंछी पकड़ो। अभी तुम बड़े छोटे हो। तुम्हारा आपूंग शिकार करके लाता है, हिरण और पक्षी। तुम अवाक देखते रहो। तुम्हारा बाप, माँ, दीदी—सब खेतों में चले जाते हैं। गड़म आयु, तुम्हारी दादी सम्हालती है। गाय-भैंस भी देखती है। तुम्हारी मँझली दीदी गाय चराने जाती है। तुम्हारी गड़म आयु गरम मड़गीला भात बनाती है और सींक में गूँथ कर खरगोश भूनती है। तुम उसे नमक-मिर्च से खाते हो।

ये सारे पेड़, पहाड़, पंछी, टिड्डे, साँप, जीव-जंतु कहाँ से आये हैं ? तुम मुँह बाए देखते हो। रात को बाघ आता है। बाप बाघ को भगाता है। बाघ बछड़े और पाड़े ले जाना चाहता है। बाप उसे भगाता है। पहाड़ से हाथी उतरते हैं। झुंड-के-झुंड हाथी। चीख़-चीख़ कर, बाँस पीट कर, आग

जला कर कौन लोग हाथी भगाते हैं ? वे पहाड़िया हैं। पहाड़िया किसी के सामने नहीं आते। वे जंगलों में आग जलाते हैं। लपटें आसमान छू लेती हैं। कितना सुन्दर ! तुम भौंचक्के हो जाते हो।

"गड़म आयु ! लपटें आकाश में कैसे चढ़ती हैं ? आग में क्या जीवन है ?"

"अरे, वे आग लगा कर ज़मीन साफ़ करते हैं। हम भी पहले करते थे। अब नहीं।"

"वे अच्छे लोग हैं ?"

"सब अच्छे हैं।"

इसी तरह भौंचक्के, मुँह वाए तुम बड़े होते हो। आठ बरस के होने पर धर्म-कर्म के प्रधान नायेक आकर तुम्हारे हाथों में देते हैं धनुष और तीर। तुम तिलका मुर्मू हो, तिलका माझी बनोगे किसी दिन। दादी कहती है, "आँखें बंद करके देखती हूं, तिलका माझी को सब कितना सम्मान दे रहे हैं।" दादी की बातें सुन कर सब हँसते हैं। हाथ में तीर-कमान लेकर तुम उछलते-कूदते हो। "बाघ मारूँगा, हाथी मारूँगा, स---ब मारूँगा।"

तुम्हारी दुनिया तुम्हारा गाँव है। तुम नहीं जानते, तुम्हारे गाँव जैसे अनेकों गाँवों में कोई नहीं जानता कि जब तुम सात साल के थे तब 1757 में तुम्हारे गाँव के पूरब, भागीरथी के पार क्या कांड हुआ था। प्लासी नाम की एक जगह पर राजा-राजा की लड़ाई वाले खेल में बंगाल के नवाब हार गये थे, मारे गये थे। साहबों द्वारा दिया ताज सिर पर रख कर मीर जाफ़र नवाब हो गया था।

तुम कुछ नहीं जानते। साहब कब से सेंध लगा कर भीतर घुसे आ रहे हैं। नवाब के खजाने में इतने हीरे-मोती, इतना सोना-चाँदी कहाँ से आता है ? वे सारे इलाक़े पर क़ब्ज़ा करना चाहते हैं। लाखों-करोड़ों लोग खेती करते हैं, तांत बुनते हैं और मजूरी करते हैं। उनके करोड़ों हाथों की मेहनत से, पसीने से यह हीरे तैयार होते हैं। साहब इस असल इलाक़े पर क़ब्ज़ा करना चाहते हैं। तुम कुछ नहीं जानते।

तुम और पहाड़िया खेती करना जानते हो। इस विस्तृत जंगल की तरफ़ किसी लालची के हाथ बढ़ाने पर तुम जान हथेली पर रख, तीर-

कमान हाथों में ले उतर आते हो लड़ने के लिए। तुम जानते हो कि तुम स्वाधीन हो। किसी शासक की अधीनता तुमने कभी क़बूल नहीं की। मुग़ल-अमले, नवाब-सूबेदार—किसी ने तुमसे कर-लगान नहीं माँगा। इसके एवज़ में परगनादार, चकलेदार दुर्गापूजा में तुम्हें सम्मान देते रहे हैं।

बाहरी दुनिया से जो लोग आये हैं, वे भी तो गरीब-गुरबे, खट कर खाने वाले लोग हैं। कोई विरोध नहीं उनसे। कोई शासक नहीं, पर यह समाज अपना शासन बनाये हुए है। लालच नहीं, चोरी नहीं। जात-पाँत का दुशासन नहीं। ऐसी ज़िन्दगी पाकर वे तुम्हारे कृतज्ञ हैं।

अभी भी तुम्हारी दुनिया कितनी निश्चित है!

तिलका के लिए यह जंगलनुमा जगत अत्यंत मायावी है। उड़ कर वह जंगलों की सीमाएँ देखना चाहता है। साँप-नेवला बनकर वह मिट्टी को अंदर से देख आना चाहता है। दांतुल हाथियों की तरह ज़मीन कँपा कर चलना चाहता है। पेड़ बनकर आसमान छू लेना चाहता है। बीहड़ वन: बनकर वह पथरीली ज़मीन ढँक लेना चाहता है।

"गड़म आयु, यह सब कहाँ से आया?"

दादी उसे पास बिठाती है। रूखे हाथों से घास की रस्सी बनाते-बनाते कहती है, "सब-कुछ बताऊँगी।"

दादी के पास रहकर ही वह सब-कुछ सीखता है, जिसे न जान कर संथाल के रूप में पैदा होना बेकार है। यह सब खून में है, खून में रखना होता है। नहीं तो तिलका अपने बेटे-बेटियों को इतनी सारी सच्चाइयाँ कैसे बतायेगा? यह सब तो जानना ही पड़ता है।

बातें करते-करते जंगलों और धान के खेतों से ढंकी ज़मीन में अपनी जगह भी बता देती है, तिलका को। सरदियों की शामों को बर्फ़ीली हवाओं से काँपता तिलका कहानियाँ सुनता है।

"गिन नहीं सकते रे! आकाश में कितने तारे हैं? यह क्या गिने जा सकते हैं? उसी तरह अनगिनत चाँद पहले की बात है। तब इस दुनिया में कहीं कुछ नहीं था। कहीं कुछ नहीं, कोई नहीं। पता नहीं कहाँ से एक सफ़ेद हंसिनी आयी। इतनी बड़ी, दूध के फेन जैसी सफ़ेद, आसमान के इंदा चांद की तरह सफ़ेद। उस हंसिनी ने दो अंडे दिये सफ़ेद, गोल-गोल।

उनमें से फूट कर निकले एक लड़का और एक लड़की। ये ही हमारे पहले माँ और बाप थे। पिलचू बूढ़ी, पिलचू हाड़ाम। इन्हीं के संतान से पैदा हुए पहले सात गोत्र। कोई कहता है वे हिहिड़ी में थे, कोई कहता है आहिड़ि-पिड़ि में थे। तब की बातें हैं यह, तिलका ! बहुत-कुछ जानती हूँ, बहुत-कुछ नहीं जानती। वहाँ से घूमते-घामते वे आये खोजकामान। अब ज़रा बता, हमारे यहाँ कौन-कौन-से पर्व होते हैं ?"

"आखन, माघ-सीम, सार्जोम बाह, आरो-सीम, माह्मारे, रोहिन, आसाढ़िया, मोर आति, नवाई, जंताल, रोंगा राकार, शाक-रात—कितने बताऊँ ? इतने...इत--ने पर्व।"

"हाँ-हाँ। पर्व तो करते ही हैं, करने ही होते हैं। पर खोजकामान में उनसे पता नहीं क्या भूल हो गयी, बस !

"क्यों, क्या हुआ !"

"आकाश से सावन की बारिश जैसी आग बरसी। आग बरसी खोज-कामान में। एक औरत, एक मर्द हारत पहाड़ की चोटी पर आये। वहाँ आग नहीं बरसी। सब जलकर मर गये। वे औरत-मर्द गये शाशांगबेड़ा। फिर गये जारपि। जारपि में था मारांगबुरू। पहाड़ पार करके दूसरे देश जाने का रास्ता कहाँ था ? मारांगबुरू में बाग की पूजा की उन्होंने। पहाड़ के देवता ने खुश होकर, उन्हें रास्ता दिखा दिया। वे उसी रास्ते से आहिरि आये। आहिरि में वे खेती करने लगे, शिकार करने लगे और फिर घर बनाकर रहने लगे। धीरे-धीरे वे बढ़ने लगे। बाल-बच्चे होने लगे। तब वे केन्द्रि आये, फिर छाय देश। फिर आये चंपा। चंपा में बहुत दिन तक रहे संथाल लोग। लेकिन उनके सजे-सजाये देश पर दूसरों ने दखल कर लिया। तब वे सावंत देश में आ गये।"

"फिर क्या हुआ, गड़म आयु ?"

"फिर आदमी बढ़ गये और वे देश छोड़ आये। हम घूम-घूम कर यहाँ आ पहुँचे।"

"बस, हो गया ?"

"और क्या, यही हमारी कहानी है।"

"फिर क्या हुआ ?"

तभी सोमी अन्दर आयी। बोली, "आयु, तू कितना बक सकती है! बोल-बोल कर तेरा गला नहीं सूखता?"

फिर माँ ने भात पकाया। तिलका को बुलाया, "चल,खा ले। कल धान कूटना है, बहुत काम हैं।" वह खर-फूस के कमरे में सो गया। नींद में उसने उसी हंसिनी का सपना देखा। संथालों के पहले बाप और पहली माँ को पेट में लेकर उड़ रही है हंसिनी। उसके डैनों से चकमक बिजली निकल रही है। तिलका ने जैसे उसे आवाज़ दी, 'ओ हंसिनी! तुम्हें देखा है मैंने। दादी को बताऊँगा, समझी?' लेकिन दूसरे दिन नींद से जागने पर वह सब कुछ भूल गया।

3

बड़े होते-होते तिलका ने अपनी उम्र के लड़कों से, नये बाशिंदों से नये खेल सीखे, जैसे—गुल्ली-डंडा। यह खेल संद्रा लोगों ने पहले कभी नहीं खेला।

उसके बड़े होते-होते उसकी दो दीदियों की शादी हो गयी। शादी के बाद उनके सगे-संबंधियों की संख्या भी बढ़ी। फ़सल के समय सब लोग एक-दूसरे के खेतों में जाकर सहायता करते थे। तिलका के काम भी बढ़े। खेती-बाड़ी में हाथ बंटाओ। गाय-भैंस चराना भी तुम्हारा ही काम है। तिलका के तमाम हमजोली भी यही करते थे। गुलेल थी उनकी परम सहचरी। गोली से पक्षी मारो, फिर लताओं से बाँधकर कंधे से लटका कर घर आओ। तिलका चौड़े सीने का लड़का था। डोमों से उसने नेजा-बरछा चलाना सीखा।

मस्त लड़का है। शाल पेड़ की तरह सख़्त बदन। चौदह बरस की उम्र में उसने शिकार-पर्व वाले दिन दाँतों वाले सूअर को तीरों से मारा तो सभी ने उसकी तारीफ़ की।

यह शिकार-उत्सव केवल उनका ही नहीं, पहाड़ियों का भी है। तीन दिन तक चलता है यह उत्सव, सरदियों के ख़त्म होने पर। सबसे प्रिय उत्सव

है यह। तीन दिनों तक वे घर नहीं लौटते थे। सारे गाँवों के मुखिया एक हो जाते हैं। दस-बीस-पचास गाँवों का एक परगना होता है। उसका प्रधान परगनायेत होता है। सारे परगनायेत भी एक हो जाते हैं। सब एकमत से शिकार का दिन ठीक करते हैं। पुरुषों के इस उत्सव में दिन-भर शिकार, फिर शाम को एक जगह मेला लगता है। वहाँ आग जलाओ, शिकार पकाओ-खाओ। बारी-बारी से कोई सोये, कोई पहरा दे। तीन दिन बाद सारे मुखिया एक होकर जंगल जलाकर साफ़ की गयी ज़मीन पर जुटते हैं। लो-बिर सेन्द्रा या सेन्द्रा दुरुपू-ए—यह एक बड़ी विचार-पंचायत सभा जुड़ती है। यहाँ गाँवों के अभियोग सुने जाते हैं। माझी और परगनायेत उन पर विचार करते हैं।

इस विशाल जंगली इलाके में सौ मील के घेरे में छिटके अनेकों गाँव हैं—कुछ छोटे, कुछ बड़े।

तिलका जानता है, उसका समाज है, अपना ग्राम-समाज, जिसका प्रधान है उसका बाप सुंद्रा मुर्मू, माझी। शिकार-उत्सव में वह तेरह वर्ष की उम्र तक नहीं गया। लेकिन जब वह चौदह वर्ष का हुआ तो गोपी, चाँदो, तिभुवन, हारा, सना—सभी लड़कों के साथ उसे भी शिकार-उत्सव में जाने की आज्ञा मिली। वैसे इतनी उम्र तक वे शिकार करते रहे हैं। दस से तेरह बरस तक वे लड़के दल बाँधकर गाँव के आसपास शिकार करते रहे हैं। बेशक उन्होंने तीन दिन और तीन रातें जंगल में नहीं काटीं और शिकार का मांस खुद नहीं पकाया-खाया। गाँव में लौटकर भोज किया है। औरतों ने सहयोग दिया है। नाच-गान हुए हैं।

इस बार तो वे बड़े हो गये हैं। इस बार ग्राम-समाज ने उन्हें वयस्क स्वीकार किया है। तिलका ने बाप से पूछा, "आपूंग, सारे गाँवों के लोग आयेंगे?"

"हाँ रे।"

"कितने गाँव हैं?"

"अनेकों।"

"कितने?"

"तीन सौ के क़रीब।"

"कहाँ ?"

' दूर-दूर।"

"देख नहीं सकते ?"

"आँखों की रोशनी इतनी नहीं।"

"कैसे पता चलेगा ?"

"तुझे ही अब सब-कुछ जानना होगा—समाज के बंधन, समाज के नियम-क़ानून, रीति-रिवाज। चाहे क़रीब रहें या दूर, सब संथाल एक होते हैं। सारे आदमियों का एक ही समाज है। तू संथाल का ख़ून है। तेरा ख़ून, तेरा वंश इतना बड़ा है—याद रखना।"

"हाँ आपूंग, याद रखूंगा।"

"शिकार-पर्व में दूर-दूर से माझी आयेंगे और परगनायेत भी आयेंगे। अनेक गाँवों का एक परगना और हर परगने का एक परगनायेत। कभी-कभी बड़े गाँव का माझी परगनायेत भी होता है। ख़बर तो करनी ही होगी।"

"कैसे करोगे ख़बर ?"

सुंद्रा थोड़ा मुसकराया, फिर बोला, "अहिरि, कोंद्री, छाय, चम्पा, साउन्त में जैसे संथालों ने ख़बर दी थी! शाल की छाल में गिरह बाँधकर ख़बर दूंगा। पहाड़ियों को जब कोई ख़बर भेजनी होती है तो वे चोटी पर आग जलाते हैं। उसे देखकर दूसरे पहाड़ों पर भी आग जलती है। आग से ख़बर भेजी जाती है वहाँ। हम गिरह से ख़बर भेजते हैं। सब जान जाते हैं।"

"ये सारे नियम बहुत पुराने हैं क्या ?"

"बहुत पुराने। इन्हीं से हमारा समाज बँधा है। बाहरी आदमी ये सारी बातें नहीं समझते।"

तिलका ने जाना कि वह कितने बड़े समाज का सदस्य है। छिटके-बिखरे गाँवों में कौन कहाँ-कहाँ बिखरा है, पर सभी गिरह के बंधन में बंधे हैं। सब एक पर्व एक साथ मनाते हैं। मुर्मू, टूडू, किसकू-सोरेन, हाँसदा, बास्के—सभी एक तरह से नाचते हैं। एक नियम मानते हैं। एक-दूसरे की

खेती-बाड़ी में सहायता करते हैं। ऐसा भरोसा है एक-दूसरे पर, तभी तो संथाल आत्मसम्मानी हैं।

संथाल-समाज में जीवन एक आनन्दोत्सव है। और मृत्यु ?

सौआ धारतिरे हासा हड़मरे
लान्दाय लेकागे जिउई मेनाः।
नौआ जिउई द शिशिर दाः लेका
अका दिशम चंग् अटांग् चालाः।
(इस पृथ्वी पर इस मिट्टी के शरीर में,
प्राण की वायु, प्राण की हँसी,
यह जीवन सुबह का शिशिर है,
कोई नहीं जानता, कब चला जाये।)

समाज का बंधन ही सब-कुछ है। बच्चा पैदा होने पर जन्म-छातियार और नामकरण पर केको-छातियार का अनुष्ठान होता है। तब वह समाज का हिस्सा बनता है। एक परिवार में बच्चा पैदा होने पर पूरे गाँव-भर में सूतक चलता है। जातकर्म हुआ, नामकरण हुआ। गाँव-समाज को भोज खिलाया, हँडिया पिलायी तो सूतक दूर हुआ। सुंद्रा बच्चे का चेहरा देखकर हँसा और बोला, "बाहर से लोग आकर हमारे समाज में शामिल होना चाहते हैं। तुमने वह गीत नहीं सुना। शिकार-पर्व पर सुनोगे। शिकार-पर्व की प्रथम रात्रि को अलाव के पास बैठकर पचास गाँवों के सैकड़ों लोगों के मुँह से एक साथ सुनोगे—

"वाहारेद सहराय वेद
ईइयँहँ दादा लाई आइयेंपे
ईइयँहँ दादा आपे जाति गे।
आपे रेयाः देवा सेवा
ईइयँहँ दादा बाताय गेया
ईइयँहँ दादा आपे जाति गे।
सेनद्रारे द कारकारे द
वलनरे से नेवता इयँ पे
ईइयँहँ दादा आपे जाति गे।"

(मुझे बुलाओ अपने बाहा व सोहराई पर्व में,
सच कहता हूँ,
मैं तुममें से एक हो गया हूँ।
तुम्हारे तीज-त्यौहार सब मेरे जाने हुए हैं,
सच कहता हूँ,
मैं तुममें से एक हो गया हूँ।
जब शिकार पर जाना हो तो बुला लेना मुझे,
सच कहता हूँ,
मैं तुम में से एक हो गया हूँ।)

गीतों के साथ-साथ अतीत की याद—

चंपा से साउन्त,
कितना दूर कितना दूर !
नगाड़ा, माँदल, बाँसुरी के सुरों का रास्ता,
पीठ पर बच्चा, सर पे बोझा ले चलने का रास्ता,
कितना दूर कितना दूर !
फिर शाल के वन और मैदान,
नीचे बहती नदी,
सबने मुझे बुला लिया।
चकमक पीतल की थाली-सा सूरज डूबते-न डूबते
चकमक पीतल की थाली-सा चाँद उग आया।

ऐसी ही अद्भुत एक रात को तिलका ने फिर वही स्वप्न देखा। वह एक मैदान में सोया है। चकाचक सफ़ेद हंसिनी चक्कर काटते-काटते आख़िरकार उसकी छाती पर बैठ गयी। तिलका चिल्ला उठा, "आपूंग, आपूंग, सफ़ेद हंसिनी मेरी छाती पर...जगह ढूंढ़ रही थी...फिर चक्कर काट काटकर यहीं बैठ गयी।"

तिलका चीखता हुआ उठ बैठा।

सब जग गये। क्या हुआ ? क्या हुआ ? कौन जानवर आया ? रात का चौकीदार कौन है ?

सपने का डर अभी दूर नहीं हुआ था तिलका के मन में से। किसी ने

आग में लकड़ी फेंकी । तेज़ी से आग जल उठी ।

सुंद्रा ने धमकाया, "क्यों, क्या हुआ ?"

"सफ़ेद हंसिनी !

"कहाँ ?"

"आकाश में चाँद के नीचे चक्कर लगा रही थी, बस । सफ़ेद डैने बहुत बड़े, बादलों से भी बड़े । उतरना चाहती थी, पर जैसे उसे जगह नहीं मिल रही थी । फिर वह उतरती गयी, उतरती गयी और मेरी छाती पर बैठ गयी ।"

"तेरी छाती पर बैठी ? सफ़ेद हंसिनी ?"

"हाँ, बाबा !"

"सपना देखा ?"

"हाँ । पहले भी ऐसा ही देखा था । अब याद आ रहा है ।"

सब एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे । यह सफ़ेद हंसिनी उनके रक्त में अपने डैने धोना चाहती है शायद । सबने ऊपर देखा—तारों-भरी रात । चारों तरफ़ देखा—पहाड़, जंगल, सभी कुछ काला । अपार रहस्यमय पहाड़ी वन्य-प्रांतर । आज भी, अब भी । तिलका के सपने ने जैसे किसी अलौकिक गम्भीर रहस्य की सूचना दी हो ।

आड़ाबुरू गाँव के माझी महर हेमब्रम ने पूछा, "सुंद्रा ! तेरे बेटे ने किसे सपने में देखा ?"

"क्या समझते हो तुम इससे ?"

"तुम क्या समझते हो ?"

सब एक-दूसरे से पूछते रहे । तिलका आग की लपटों को देखता हुआ स्थिर बैठा रहा ।

अंत में महर हेमब्रम ने कहा, "किसे सपने में देखा है, तुम समझे या नहीं । अब बात यह है कि ऐसा सपना देखा क्यों उसने ? कोई बता सकता है ?"

"तू ही बोल । माझी तू है, परगनायेत भी तू । ज्ञानी है । तेरा बाप भी ज्ञानी था । तू ही बोल ।"

"ज्यादा बड़ी बात नहीं है । सपने में दो बातें बता दी गयी हैं । पहली

बात यह कि पिलचू हाड़ाम और पिलचू बूढ़ी की संतान को फिर से बसेरा ढूंढ़ने जगह-जगह घूमना होगा। ऐसा कब होता है ? जब कोई विपदा आती है। यही बात है कि कोई विपत्ति आ रही है। तब ही पाहिक आयु और पिलचू बूढ़ी, पाहिक आपूंग और पिलचू हाड़ाम दोनों की आयु हंसिनी ने सपना दिया है। यह बता दिया है कि उनके बच्चे संथालों को नया देश तलाशना होगा। और ऐसी विपत्ति में...आह ! मेरा बदन सिहर उठा है। ऐसी विपत्ति में तिलका हमारी रक्षा करेगा।"

"तिलका ? तिलका मुर्मू ?"

"सपने का और क्या मतलब हो सकता है, मुझे नहीं मालूम।"

तिलका मुंह बाए महर हेमब्रम को देखता रहा।

महर हेमब्रम फिर बोला, "इस समय हम सभी यहाँ हैं। बात हो ही जाये। पूजा-पर्व में कोई भूल-चूक न हो। फिर सेंद्रा-पुरुष-ए पर बैठने से पहले सभी सोच लें। समाज का कोई पाप या दोष छुपा न रहे। किसी ग्राम में जाहेर थान को धोने, लीपने और पोंछने में कोई चूक न रहे। ऐसा सपना तिलका ने देखा है तो हमारा भी कर्त्तव्य बनता है कि अपनी तरफ़ से कोई चूक न हो।

सवेरे तक बातें चलती रहीं, बहुत सारी बातें।

4

तिलका ने चौदह बरस की उम्र में, 1764 मे वह प्राचीन राजहंसिनी देखी थी। उस राजहंसिनी के पैदा किये संथालों द्वारा घर छोड़ने से पहले दूसरी तरफ़ घनघोर बादल घिर आये। रजवाड़ों के इतिहास में चोरी-सीनाज़ोरी, जायदाद पर मार-धाड़ के मामले होते हैं। सुंदर शब्दों से सत्य ढंका होता है। रजवाड़ों का इतिहास तो जनसाधारण के इतिहास की नींव पर ही तैयार होता है। मृत सिराजुद्दौला के तोशेखाने के हीरे-मोती और स चाँदी का स्रोत था खेतिहरों का लगान, ताँती का ताँत, दो कटे-फटे हा

मजूरी। तिलका के सात बरस का होते-होते मुर्शिदाबाद और कलकत्ता के बीच, नवाब और ईस्ट इंडिया कंपनी के बीच बंदरबांट का खेल शुरू हो गया था।

1751 में तिलका सात बरस का था।

1757 में मीर जाफ़र को गद्दी पर बिठाया गया, जिसके लिए क्लाइव को पुरस्कार मिला पैंतीस लाख दस हज़ार रुपये। 1740-50 में राजा कृष्णचंद्र ने भारतचंद्र कवि को एक सौ रुपये दिये थे घर बनाने के लिए। भारतचंद्र ने सौ रुपये में ही घर बनवाया। एक सौ रुपये में एक अच्छी-खासी गृहस्थी के लिए घर बन सकता था तब। उस समय पैंतीस लाख दस हज़ार रुपयों का मोल कितना होगा? उससे पैंतीस हज़ार एक सौ घर बनाये जा सकते थे। कंपनी के बड़े साहबों को साढ़े सात लाख से लेकर बारह लाख रुपये मिले। कंपनी को मिली साल में बाइस लाख आय वाली चौबीस परगने की जमींदारी। क्लाइव साहब लेंगे, मुर्शिदाबाद से साढ़े बारह लाख वर्द्धमान, किशनगढ़ और हुगली से साढ़े दस लाख रुपये। अगले साल उन्नीस लाख, रुपये बचेंगे तो तीन ज़िले गिरवी रहेंगे। बिहार के तमाम कारोबार का एक-छत्र अधिकार क्लाइव को मिल गया।

इन सब चीज़ों की ज़रूरत क्यों पड़ी?

इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति जो सफल करनी थी।

जब तिलका दस बरस का था तब 1760 में कंपनी को लगा कि मीर जाफ़र से अब ज़्यादा निभेगी नहीं। गाय बूढ़ी होने पर भी क्या दूध देगी? मीर जाफ़र को हटाकर उन्होंने नवाब के जमाई मीर क़ासिम को नवाब बनाया। मीर क़ासिम भी कंपनी का देनदार हो गया। वर्द्धमान, चट्टग्राम, मेदिनीपुर कंपनी के हाथों में चले गये।

वॉंसिटार्ट को मिले साढ़े-सात लाख, होलोवेल को मिले चार लाख पाँच हज़ार। कंपनी के दूसरे अमलों को मिले डेढ़ लाख से तीन लाख पचहत्तर हज़ार तक।

चौदह बरस के तिलका ने जब राजहंसिनी को देखा था सपने में तो वह यह नहीं जान सकता था कि बक्सर में मीर क़ासिम कपनी से हार चुके हैं। 1764 में मीर क़ासिम हार कर ख़त्म हुआ। 1765 में बंगाल-बिहार

और उड़ीसा की दीवानी कंपनी के हाथों में चली गयी।

तिलका इत्यादि कुछ नहीं जानते थे। तब वर्षा हो रही थी। धान की बुवाई चल रही थी। झमाझम बरसात में काले शरीर भीग रहे थे! औरतें गीत गाते हुए धान बो रही थीं—

नदी के किनारे, जंगल के किनारे
फूल खिले हैं, फूल खिले हैं।
भादों के फूल।
बाघ नहीं उतरता पहाड़ों से नीचे,
बाघ चिल्लाता है पहाड़ों की चोटी से
भादों के दिनों में।
फूल बटोरे हैं,
बालों में गूँथे हैं,
फूल बटोरे हैं,
कानों में पहने हैं,
भादों के फूल।

तिलका कुछ नहीं जानता था। लेकिन वीरगंज के हाट में उनका दाल-धान-सरसों ख़रीदता था हाट का आढ़तदार। उससे खरीदता था कंपनी का गोलादार।

ये कौन हैं...काले-काले लोग?

बँहगी पर लाद कर फ़सल लाते हैं।

रीठा देखते ही आढ़तदार बोला था—"और ला सकता है?"

"नहीं।"

आँवले देखते ही बोला—"और ला सकता है?"

"कितने! कितने चाहिए?"

एक पहाड़-भर आँवले सुंद्रा और उसके साथी अगली बार हाट में ले आये थे। आढ़तदार ने दाम देना चाहा। सुंद्रा इत्यादि ने सिर हिला दिया। बोले, "दाम नहीं लेंगे! पर अब लायेंगे नहीं। यह सब लाने पर हम सौदा नहीं ला सकते। अब ला नहीं सकेंगे।"

"पैसे नहीं लेगा? यह क्या बात हुई?"

औरतों के लिए लकड़ी के कंघे, कंघियां और कौड़ियों की मालाएँ ख़रीदते-ख़रीदते सुंद्रा बोला, "पैसे क्यों लें ? जंगल का फल है। लाने में बस हमारी मेहनत लगी है। फल में क्या हुआ ?"

"धान-चावल तुम्हारे खेतों में होते हैं ?"

"हाँ रे !"

"ज़मीन अच्छी है।"

"हाँ, साथ की साथी है।"

"अरे बाप रे !"

"अरे बाप, ठीक ही कहा। तीर से बाघ मारते हैं, हाथी मारते हैं। लड़ाकू क़ौम है। इनके साथ कारोबार चलता है, पहाड़ियो से नहीं ! वे दो महीने में एक बार पहाड़ से उतरते हैं। धान उतारेंगे, हिरण की छाल, हिरण का मांस। नमक लेंगे, गुड़ लेंगे, जो उन्हें चाहिए, ख़रीदेंगे और फिर चले जायेंगे। कुछ बातें करने पर तीर मार देंगे। भयानक क्रोधी जात है।"

"धंधा क्या करते हैं ?"

"धंधा क्या है उनका ! बहुत दिनों तक निष्कंटक रहे हैं। स्वाधीन। कोई लगान नहीं लेता। लेने की चेष्टा भी नहीं की। इतने जंगल-पहाड़ हैं, कौन जाये भीतर ? ज़मींदार जब भी शिकार करने अंदर गये तो पहाड़ियो ने तीर मार दिया। वे किसी को कर नहीं देते। चकलेदार उन्हें ही ख़िलवतें भेजते हैं।"

"सुना है, कंपनी डाक-व्यवस्था के लिए उधर से रास्ता बनायेगी।"

"तो मरेगी।"

"तुम उनसे डरते नहीं ?"

"अन्याय नहीं करता। उन्हें सम्मान देता हूँ तो डर कैसा ?"

कंपनी की डाक को लेकर सर्वप्रथम पहाड़ियो ने हंगामा खड़ा किया। तिलका तब उन्नीस बरस का हो चुका था। उसके बाप ने कहा था कि उड़द के बीज देगा आड़ाबुरू के महर हेमब्रम को। जब वह बीज लेकर पहुँचा तो रूपा से मुलाक़ात हुई। रूपा दालान के बाहर पैर फैलाकर धान सुखा रही थी। यह काम घर की औरतें ही करती हैं। पर तिलका को

देखते ही वह चौंकी। बाप रे ! दीवार के जैसा सीना, घुँघराले बालों से ढँकी छाती, शरीर सार्जोमि—शाल वृक्ष जैसा पुष्ट, सतेज। ऐसा मर्द तो रूपा ने देखा ही नहीं सोलह बरस से।

वह सहज हुई और उसने उससे बैठने को कहा। कहने लगी, "आपूँग खेत पर गये हैं। आयु मछली पकड़ने गयी है। आती ही होगी।"

तिलका ने पोटली उतारी और बैठ गया। रूपा ने उसे पानी और गुड़ दिया। इसी बीच महर वापस आ गया। महर हेमब्रम बड़ा खुश हुआ।

"दो बड़े-बड़े मुर्गे अलग से रखे हैं मैंने कि जब तू आयेगा तभी काटूँगा। लाल चावल भी रखा है कि तू आयेगा तो पकाऊँगा। रूपा, ज़रा पानी दे। हाथ-पैर धो लूँ। घर की ख़बर सुना, तिलका !"

खा पीकर शाम को तिलका लौटने लगा। रूपा मुसकरायी और बोली, "चैत में आना, सूखे कूल खिलाऊँगी।"

तिलका हँसा। सूखे कूल क्या ऐसी चीज़ है, जिसे खाने के लिए आड़ा-बुरू आना होगा ? उनके गाँव के जंगल में अनेकों कूल के पेड़ हैं। पर तिलका ने कुछ कहा नहीं।

उसके बाद एक बार हाट में सुंद्रा को महर ने काम ख़त्म हो जाने पर सारी बातें बतायीं। तिलका और रूपा की शादी प्रस्ताव रखा। शिकार-उत्सव के दिन से ही महर की आँखों में तिलका चढ़ गया था। घर भी अच्छा, वर भी अच्छा। सुंद्रा का घर सज उठेगा। लड़की भी बड़े काम की है। महर के छह बच्चे हैं। जिन लड़कियों की शादी हो गयी है, उनके भी चार-पाँच बच्चे हैं। रूपा के भी होंगे। सुंद्रा से अभी कोई वचन नहीं चाहता महर। सुंद्रा घर जाये। माँ, बीवी—सबको बताये। महर ने सिर्फ़ प्रस्ताव-भर रखा।

फिर महर बोला, "चक्कर क्या है ?"

"क्या ?"

"साहबों के गोलादार ने यहाँ बैलगाड़ियाँ लगायी हैं। इस जंगल में ऐसा क्यों भला ? सारे धान-चावल खरीद रहे हैं वे, क्यों ? घर-घर घूम रहे हैं...क्यों ?"

"आढ़तदार कहता है कि सारे धान और चावल का चालान कलकत्ते जायेगा। इस कंपनी का कोई गोदाम कलकत्ते में नहीं है। कलकत्ता कहाँ है, यह मैं नहीं जानता। भागलपुर को जानता हूँ। भागलपुर क़रीब है। कलकत्ता दूर।"

"यह सब सर्वनाशी ख़रीद है, रे सुंद्रा! बाप रे! चार आने मन चावल। रुपये में चार मन, पाँच मन भी मिलते हैं। तब इतनी खरीद? कंपनी के पास क्या इतने रुपये हैं?"

"कौन जाने?"

"तुम बेचते हो क्या?"

"नहीं-नहीं, बेचेंगे क्यों? रुपये का क्या करेंगे?"

"मैंने तो गाँव में कह दिया है कि हाट देखो। काँच की चूड़ियाँ, गले में कौड़ियों की माला, बाल बाँधने के फ़ीते, चाँदी के पायल—सब हैं। सब खरीद कर पत्नी को सजाओ। चावल बेचो।"

सुंद्रा चौंका। महर ठीक कहता है। हाट से लौटने पर तिलका बोला, "आपूँग, यह क्या हो रहा है? सब पहाड़िये नया धान-चावल बेच रहे हैं। घर ख़ाली करके डोल-के-डोल चावल बेच रहे हैं।"

"बेच कर क्या कर रहे हैं?"

"ख़रीद रहे हैं।"

"क्या?"

"चूड़ी, माला, रंगीन फ़ीते, गमछे, कपड़े...क्या बताऊँ, क्या मैं सब जानता हूँ? हाट में इतनी आमदनी कैसे है?"

"नहीं रे! यह कोई अच्छी बात नहीं है।"

"और एक बात।"

"क्या?"

"हाट में मैं बहुत घूमता हूँ। सो बहुत बातें पता चली हैं। पहाड़ के उस तरफ़ से कंपनी रास्ता बनायेगी। उस रास्ते से डाक जायेगी। पहाड़िया बस्ती के क़रीब से।"

"सच?"

"सच। आढ़तदार ने हँसते हुए बताया है। रास्ता बनाकर वे जंगल में घुसेंगे।"

सुंद्रा वोला, "कुछ समझ में नहीं आता। इतने धान-चावल खरीदने का धंधा भी मेरी समझ में नहीं आ रहा।"

सुंद्रा ने गोरेत—दूत भेज कर गाँव से ख़बर मँगायी। हाँ, तमाम संथाल एक वात सोचते हैं, एक काम करते हैं। गाँवों के माझी, परगनायेत—सब चिंतित हैं। चावल की खरीद क्यों चल रही है? क्यों चावल इस अजीब नाम वाले कलकत्ता शहर में जा रहा है? हाट में इतनी बाहरी चीज़ें क्यों आ रही हैं?

सव इस नये धंधे से चिंतित हैं। फिर कई माझियों और परगनायेतों ने गिरह भेजी और सलाह की। इस तरह के कारणों से पहले कभी गिरह नहीं भेजी गयी। कोशानी नदी के किनारे के गाँवों के संथाल इस आपात-स्थिति में एक हो गये हैं। वहाँ कई-एक सिद्धांत अपनाये गये हैं।

"हम भूलें नहीं। वाह्य जगत से, हमारे समाज का लेन-देन चलता रहा है। जंगलों से घिरे इस जगह में हम निःशंक हैं। हमारी ज़रूरतें भी कम हैं। महीने में एक-दो बार हम हाट जाते हैं। धान-चावल के वदले नमक और अन्य सौदा लेते हैं—बस। मोची, कुम्हार, ठठेरे वग़ैरह जब से गाँव में रहने लगे हैं, सारे काम गाँव में ही हो जाते हैं। पहले की हाटों में हम कभी पैसा, सिक्का ले लेते थे फ़सल के बदले। उनसे ख़रीदते या बनवाते थे तीरों के फलक, दरवाज़े या मिट्टी के बरतन। यह समस्या भी अव नहीं रही।

"जव ये समस्याएं नहीं हैं तो घर का खाना नहीं बेचेंगे हम। हाटों में हम चमकती विदेशी वस्तुएँ नहीं ख़रीदेंगे। यह अच्छी बात नहीं है। वे ख़रीदते हैं, चालान देते हैं। बाप रे! सोच के देखो। अब वँगला सन् 75 चल रहा है, आढ़तदार कहता है। 75 के पूस में सारी फ़सल वेच दोगे तो अगले साल खाओगे क्या?

"ज़रूरत के अलावा धान-चावल हम नहीं वेचेंगे।"

'नहीं वेचेंगे' को लेकर हाटों में भयानक वलवा मचा। धान-चावल वेचो, पैसे लो। सब चीज़ें ख़रीद लो।

"वाहरी चीज़ें नहीं ख़रीदेंगे।"

"ज़रूरत के अलावा हाट नहीं जायेंगे।"

ये वातें न मानने पर भयानक दंड। समाज से वाहर। जातिच्युत—विटलाहा। विटलाहा के नाम से सव कांप उठते हैं। तुम्हारा परिवार-वंश—सव समाज से वाहर। कोई तुम्हारे साथ नहीं खायेगा। उठ-बैठ बंद। समाज से माफ़ी माँग कर जनजाति का अनुष्ठान करके ही समाज में लौट सकोगे। यह भयानक वात भी आज करनी पड़ी। पर यह पता चला कि कहाँ है यह कलकत्ता, कहाँ है यह कंपनी ! सिक्के-सिक्के और मन-भर चावल। कंपनी के पास हैं तारों जितने सिक्के। सारे गाँव तो जंगलों में नहीं हैं। सीमा पर भी अनेकों गाँव हैं। उन गाँवों में वाहर से ख़वर आती है। कंपनी के लोग घर-घर घूम कर ज़वरदस्ती चावल खरीद रहे हैं। खाने को भी नहीं छोड़ते।

हाँ, हाँ, सदन परगनायेत है। उसके पास नीची ज़मीन के खेतिहर फ़रियाद ले कर आये। सारी दुखभरी गाथाएँ भी। कुछ समय पहले उन्होंने ज़मींदार से ज़रूरत के लिए कुछ धान लिया था। लौटा दिया, सूद समेत। जितना लिया, उससे थोड़ा ज्यादा। उनके समाज का यही नियम है। वढ़त के धान-चावल वाले पैसे का नाम सूद है। कंपनी इन सारे गाँवों में नये लोग घुसा रही है। ये खेती नहीं करते, कोई काम नहीं करते। उधार देते हैं, सूद लेते हैं। यह सारा गोलमाल का धंधा है। हम नहीं समझते, यह धंधा है। तुम्हें ज़रूरत है एक पल्ला चावल की। मैंने दे दिया। अब क्या लौटाने पर दो पल्ले लूंगा...अधर्म नहीं होगा ?

जो भी हो, एक चीज़ तय है कि यह कंपनी वाला धंधा ठीक नहीं है। सब गड़बड़-घोटाला है। कंपनी अच्छी नहीं है। कलकत्ता अच्छा नहीं है। सब-कुछ कलकत्ते ले जायेंगे।

यह सब-कुछ क्यों हो रहा है, हम नहीं बता सकते।

इस जमात के चलते यह जंगली इलाक़ा क्यों बच रहता है ? इस 'क्यों' का उत्तर संथाल नहीं जानते।

1769 में कंपनी-सरकार ने सारे धान-चावल ख़रीद कर गोदामों में बंद कर दिया। 1775 साल का मन्वन्तर। 1775 के अप्रैल में नये

बँगला बरस की शुरुआत होगी—1776। इस महा मन्वन्तर का नाम हो जायेगा छियत्तरवाँ मन्वन्तर। भविष्य में लोग इस मन्वन्तर की चर्चा करते रहेंगे। लेकिन लोग यह भूल जायेंगे कि कंपनी-सरकार ने तब चावल ख़रीदा था एक रुपये में मन और फिर वेचना शुरू किया एक रुपये में चार सेर। वे कभी नहीं लिखेंगे कि कंपनी के तहसीलदार, गोलादार, कर्मचारियों ने—सभी ने चावल ख़रीदा था। वे मुर्शिदावाद के नवाव के दरवार में उन साहव कर्मचारियों की वात भी नहीं लिखेंगे, जिनके पास इस मन्वन्तर से पहले एक पैसा नहीं था। वे हुंडियाँ लिखकर हज़ार रुपये उधार लेते थे। लूटकर रुपये में छह मन चावल ख़रीदते थे। मुनाफ़े में लोटते थे और फिर इंग्लैंड भेजते थे साठ हज़ार पाउंड। छियत्तर मन्वन्तर का इतिहास चिरकाल तक दवा रहेगा।

इसकी कराल छाया वीहड़ों में संथालों ने नहीं पड़ने दी। 1769 के अंत में तिलका और रूपा की शादी हुई। शादी से पहले ही तिलका अपने साथियों यानी गोपी, चाँदो, तिभुवन, हारा, सना को लेकर हाट गया। हाँ, सभी गये थे।

संथाल लड़कों को देखकर कंपनी के गोलादार ने कहा, "क्यों रे, तुमने चावल वेचना छोड़ दिया, क्यों ?"

तिलका वोला, "चावल ख़रीदेगा ?"

"कितना है ?"

"यही दो-अढ़ाई सौ मन होगा।"

लालच से गोलादार की आँखें चमक उठीं। वोला, "कहाँ, कहाँ है ? वही तो कहूँ। इतने गाँव हैं तुम्हारे। धान गोले में आ गये हैं। अभी तो वहुत चावल हैं तुम्हार पास। लाते क्यों नहीं ? यही सोचता था। तभी तो पैसे मिलेंगे रे ! देखता हूँ कि थोड़ा चावल लाते हो, सौदा-सुलफ लेकर चले जाते हो।"

"चल, चावल दिखाता हूँ।"

"कहाँ ?"

"क़रीव ही है। एक कोस नहीं चल सकेगा क्या ?"

"क्या कहता है ? चावल की ख़बर पर तो मैं दस-बीस कोस चलकर

जा सकता हूं। चल, देख लूं। दर-भाव ठीक कर लूं। तब बैलगाड़ी लाऊंगा, चावल ले जाऊंगा। चल, चल!"

चलते-चलते गोलदार बोला, "हाट में रंगबिरंगी चीज़ें हैं आजकल। चूड़ियां,-मालाएं, रिबन। वे हाट में आते हैं बेचने तुम्हारे भरोसे। उनसे भी सौदा कर सकते हो, पैसा पास होने पर। धान के बदले नमक, धान के बदले गुड़, हिरण-खाल के बदले तमाखू। तुम लोगों को अब पैसे का धंधा शुरू करना चाहिए।"

"वह भी सीख लेंगे।"

"अच्छा...बहुत अच्छा। लेकिन कितनी दूर है रे?"

"यहीं पास में तो है, बस थोड़ी दूर पर।"

"यह तो रास्ता नहीं, बस जंगल-ही-जंगल है।"

"जंगल में ही तो जा रहे हैं। अबे! रुक जा!"

"क्यों, क्या हुआ?"

गोलदार रुक गया, बुड़बक की तरह देखता रहा। गोपी इत्यादि उसे घेर कर खड़े हो गये।

"तुम...तुम क्या मुझे मारोगे?

"तेरे पैसे की थैली कहां है?" तिलका बोला।

गोलदार के हाथों से तीर के फलक की तरह झटक ली तिलका ने रुपयों की थैली। युवा तिलका क्रोध से जलता हुआ चीख़-चीख कर कहने लगा, "पैसे की थैली झनझना कर यदि कभी किसी को लुभाया या किसी पहाड़िया-जंगलिया को पटाकर उससे चावल ख़रीदा तो आज तो नहीं मारा, लेकिन उस दिन ज़रूर मार दूंगा।"

"कंपनी का नौकर हूं, मेरे बाप!"

"कौन है तेरी कंपनी? हम कंपनी को नहीं जानते, कलकत्ता नहीं जानते। सारे चावल तुम ख़रीद लेते हो तो लोग क्या खायेंगे? सब के घर में झनझनाते रुपयों की थैलियां हैं, क्यों?

"मान लिया, मान लिया।"

"और सुन...अपने समाज को सिखाना यह अधरम। झमर-झमर पैसा ले, साग से मिरची, 'धान से नमक मत बदलो। पैसा ले, चावल बेच।

क्यों ? वे दो भी आदमी तेरे ही हैं। वही जो चूड़ी-माला बेचते हैं। वही तू भी ख़रीद।"

"नहीं, नहीं, वे मेरे आदमी नहीं हैं।"

"हैं...ज़रूर हैं। मेरे बाप ने तेरा समाज देखा है। वह जब कहता है तो वे ज़रूर तेरे ही हैं। अगली हाट में यदि मैंने उन्हें देखा या किसी और दिन देखा तो तेरे तीर घुसा होगा और उनके भी ।लालच देता है ! लालच दिखाकर तू हमें पैसे देकर चावल ख़रीदेगा। और घर का भात बेच कर हम तुम्हारी रंगीन माला पहन कर नाचेंगे...क्यों ?"

"उन्हें भगा दूँगा। वचन देता हूँ।"

"यह ले अपना खन-खन झमर-झमर पैसा।"

तिलक़ा ने रुपयों की थैली फेंक दी। उसे लेकर गोलदार सर पर पाँव रखकर भागा।

अपने असाधारण सामाजिक बंधन और असामान्य एकता के बल पर संथालों ने अपने एक छोटे-से सूबे में अंगरेज़ों की घड़ियाल-बुद्धि को परास्त कर दिया। पहाड़िया नहीं कर पाये। उनके मुखिया ने समाज को दोष दिया। सभी ने यह भूल क्यों की ? एक तो पहाड़ों की ढाल पर फ़सल वैसे ही कम होती है। फिर अपना चावल उन्होंने बेचा ही क्यों ? अब जो यह हाहाकार मचा है तो क्या हो सकता है ? चावल भी ख़रीद कर खाना होगा क्या ? जब वे चावल ख़रीदने गये तो उनकी समझ में 'कंपनी सरकार' का मतलब आया। हरेक गाँव से बँहगी लेकर कुछ लोग गये चावल ख़रीदने गोलदार के दिये सिक्के, चवन्नियाँ लेकर। मुखिया की डाँट उनके कानों में गूँज रही थी। वे सोच रहे हैं कि यह ज़रूर कोई चाल है कंपनी की। जितना चावल है सब ख़रीद लेंगे। सारे सिक्के हम ख़र्च कर देंगे। तब भी चावल नहीं ख़रीद पायेंगे। भूखे मर जायेंगे। जाओ, सब जाओ। जितना चावल बेचा है सब ख़रीद लाओ। नहीं तो वे सारा चावल कलकत्ता ले जायेंगे। कलकत्ता है कहाँ, पता नहीं। भागलपुर को जानते हैं, कहल गाँव जानते हैं—कलकत्ता को नहीं जानते।

शाम को सब लौटे। खाली बहँगियाँ लेकर। चेहरा क्लांत, लटका हुआ।

"चावल नहीं ख़रीदा ?"

सब चुप।

"चावल कहाँ है ? इतना सारा चावल कहाँ गया ?"

इस बार दुख से भरे स्वर में उन्होंने कहा, "ख़रीदा है ! एक-एक सिक्के से ख़रीदा है। तब भी हरेक बहँगी में आठ सेर-दस सेर चावल ही आ पाया है।"

"यह क्या बात हुई ?"

"यह हुआ कैसे, सरदार ? हमने दो महीने पहले बेचा था एक सिक्के पर एक मन चावल। जब ख़रीदने गये तो वही चावल एक चवन्नी का सेर-भर मिला। समझे ? कंपनी का वही गोलदार बेच रहा था !"

"क्या कहता है ?"

"सिक्का-सेर। हम झूठ नहीं बोलते, सरदार ! अगर यह झूठ है तो सूरज-चाँद झूठे हैं। हाट तला नहीं, बहुत दूर है। पैदल पहुँचे गोलदार की आढ़त पर। चावल का पहाड़ था। हम समझे, यही कलकत्ता है ! कंपनी ने चावल ख़रीदा था। कलकत्ता ले जाने के लिए। इतना चावल। यही कलकत्ता होगा। कहा, देखो, देखो, सब देख लो यही कलकत्ता है। आह ! कितना बड़ा घर, पक्का दालान, भारी दरवाज़ा, बड़े-बड़े कुंडे। कलकत्ते को कुंडे से बंद रखते हैं शायद ! बाद में पता चला कि वह आढ़त है। लेकिन चावल की बाबत तो हम कुछ नहीं जानते, हम बेवकूफ़ हैं। कहा—कलकत्ता के सामने इतने नंगे-कंगाल खड़े हैं दया करो ! हम मर रहे हैं ! कहा—रोते क्यों हो !"

"क्यों रोयें, क्यों ?"

"सब हमारे जैसे बेवकूफ़ हैं रे। सारा चावल बेच दिया है। अब चवन्नी में सेर, रुपये में चार सेर चावल लेते हैं। यह बात सुनकर रो रहे हैं।"

"वही चावल ख़रीदा ?"

"हाँ, ख़रीदा। और भूखे-नंगे चले आ रहे हैं। जो गिर जाते हैं, फिर उठते नहीं।"

कंपनी बेचती है।

कंपनी बेचती है।

मुखिया चुप रहे। फिर बोले, "कंपनी कौन है...पत्थर...पाषाण ? घाटी के खेतिहरों का दुख वे नहीं जानते। धान को कोठारी में भरने का सुख नहीं जानते। यह कंपनी क्या कोई डकैत है ? ख़रीदते हैं एक रुपये में चार मन, बेचते हैं एक रुपये में चार सेर। सुनो तुम सब, कंपनी चाहती है हम मर जायें। हम मरेंगे नहीं।"

"तब क्या करें ?"

"सरदियों में कुर्थी उगायेंगे। कुर्थी के दाने गहा कर पहाड़ से उतरेंगे। जो जिसके पास है, लूट लेंगे। कंपनी की डाक लेकर जब सड़क से लोग जायेंगे तो उन्हें मार देंगे। कंपनी ने डकैती सिखायी। इसी चावल से माँड़-भात, नमक मँगायें औरतें। आपस में बाँटकर खा लो।"

"किसे लूटेंगे ? आदमी मर रहे हैं।"

"जिसके पास कुछ नहीं है, उसे क्या लूटेंगे ? जिसके पास है, उसे लूटेंगे। लूट के बचेंगे। कीड़े-मकोड़ों की तरह मरना हमें नहीं मंज़ूर।"

"तो ?"

"पहाड़ की चोटी पर आग जला दो !"

"ठीक है। पर लूटेंगे क्या संथालों से ? उनके घर में है क्या ?"

"ऐसी बात जो सोचे वह समाज से बाहर ! हम और वे, हमारे बीच कोई दुश्मनी नहीं। हम यदि उनकी तरह काम करते तो क्या यह विपदा आती ?"

"उनके ऊपर क्यों नहीं आयी ?"

"उनका समाज बंधा हुआ है। औरतों को चूड़ी-माला पहनाने के लिए उन्होंने चावल नहीं बेचा। जितनी चकमक चीज़ें ख़रीदी थीं, सब फेंक दो ! झमर-झमर पैसा भी ! चावल बेच, पैसा ले ! पैसा दे ! चूड़ी-माला-रंगीन फ़ीते खरीदे ! अब पहाड़ की ढलान से उतरेंगे और कंपनी की डाक लूटेंगे।"

"फिर ?"

"चावल भी लूटेंगे। जमींदार चकलादार नहीं हैं क्या ? वे नहीं बेचते चावल। कंपनी को उनके सिक्के-पैसों की ज़रूरत क्यों है ? उनका चावल

लूटेंगे। चावल नहीं हुआ तो कंद-मूल खायेंगे। जंगल तो कहीं नहीं गया!"

पहाड़ की चोटी पर आग जली।

सुंद्रा बोला, "हमने गिरह भेजी थी। उन्होंने आग जलायी...ऐसा क्यों...क्यों?" यह 'क्यों' 'संथालों के दिमाग़ में घूम रहा था। उदास-उदास। सरदियों में सूखे पत्ते हवा जैसे उदास थे। भालू आये कूल के खेत में। जंगल का राजा जब चलता है तो सूखे पत्ते तक नहीं चरचराते। हाथी चलते हैं झुंड में और बीच-बीच में पहाड़ के नीचे उतर कर स्थिर खड़े रहते हैं—चित्रवत।

ऐसी सरदियों में हमारे खेत खाली रहते थे। सुंद्रा गया और देख आया। उसके बाद आमन के पकते-पकते हम रबी छींट देते थे। उनकी फ़सल आमन के साथ-साथ तैयार होती थी। वह अच्छी बात थी। पेड़ बढ़िया होंगे।

ऐसी सरदी में हम जाहेर-थान में मँड़ेका की पूजा करते थे। तीन प्रधान देवताओं का एक देवता है मँड़ेका। मन की इच्छा-पूर्ति के लिए हम उसकी साधना करते थे। अच्छी फ़सल के लिए, रोग-व्याधि दूर करने के लिए। मँड़ेका के बड़े भाई थे मारांग-बुरू। औघड़ दानी। सफ़ेद मुर्ग, एक सफ़ेद पाठी बस। मँड़ेका को चाहिए लाल मुर्ग, लाल पाठा। इनकी बहन जाहेर-एरा को देते हैं लाल मुर्गी और लाल पाठी। मँड़ेका की पूजा बड़े पुण्य की की पूजा है। बड़े अनुष्ठान से कड़े नियम का पालन करना होता है।

ऐसी सरदियों में पहाड़ियों के घर-घर में होती है सूर्य-पूजा। यह पूजा रविवार को होती है! इसके भी बड़े नियम, बड़े आचार-विचार हैं। पूजा-पर्व का उत्सव पहाड़ियों के जीवन से बँधा है। शीत की हवा हमारी अपनी है...बड़ी अच्छी है।

ऐसी सरदी में हमने गिरह भेजी, उन्होंने जलायी आग।

5

पहाड़ियों का जो गाँव क़रीब है, वहाँ के मुखिया के पास गया सुंद्रा। साथ में तिलका था। सबने रोका था, "मत जाओ। क्या करना चाहते हैं, कौन जाने ? बात जाने बगैर मत जाओ।"

सुंद्रा बोला, "बात जानूँगा कैसे ? दोनों समाज इतने दिनों तक एक-दूसरे के साथ रहे हैं। अब पता भी न करूँ ?"

पहाड़िया गाँव की हालत देख सुंद्रा की छाती फट गयी। मुखिया बोला, "क्या बात है, माझी ?"

"पता करने आया हूं।"

"क्या ?"

"सरदार ! सारे सुख-दुख हमारे साथ भी हैं और तुम्हारे भी।"

सरदार ने दुख-भरी मुसकान से कहा, "कहो ?"

"आग देखी मैंने।"

"आग...देखी ? तिलका, तेरा बाप कुछ नहीं समझता। अरे, आग जलायी सो देख ली। इसमें क्या बात है ?"

"क्यों, क्या हुआ ?"

"सुख-दुख में हम एक हैं, माझी ! जब गिरह भेजी थी तो हमें ख़बर क्यों नहीं दी गयी कि कंपनी के लोभ के फंदे में मत फँसो ?"

"ग़लती हुई, मानता हूं। पर तुम्हें पता था फिर भी नहीं आये, क्यों ? अब तो मैं आया हूं। मुझे ख़बर तो नहीं की थी तुमने।"

"वह भी ठीक है। सच्ची बात है।"

तिलका धीरे से बोला, "मनसा को, तुम्हारे बेटे को मैंने सारी बातें बतायी थीं।"

"जब तूने उसे बात बतायी थी तिलका, तो उससे पहले सर्वनाश हो चुका था।" सरदार खुला। बोला, "तुम बाहर नहीं निकलते, सो कुछ नहीं जानते। ग़रीब अब इस देश में नहीं हैं। पूजा-पर्व वगैरह सब-कुछ भूल जाओ। आदमी रास्तों में मरे पड़े हैं। सिक्के-सिक्के पर अपनी संतान बेच रहे हैं। वे धनियों के दरवाज़ों पर बच्चे फेंक जाते हैं।"

"फेंक जाते हैं ?"

"नहीं तो क्या करें ? यदि खाकर बच सकें तो बचें। यह सब-कुछ इस कंपनी ने किया। रुपये में चार मन चावल ख़रीदा। चार सेर-तीन सेर करके बेच रहे हैं।"

"पर तुम डकैती डालोगे ?"

पहाड़ियो का सरदार शुष्क हँसी हँसा, "कंपनी क्या अकेली डकैत है ? लड़ें नहीं...बैठकर मार खायें ?"

"तो लड़ाई की बात कहो !"

"माझी ! सुंद्रा माझी ! तुम कुछ नहीं समझोगे ! ज़मींदारों ने हम पहाड़ियो को बेगारी में कुछ ज़मीन दी थी। हमें बँधुआ बनाया था। तब मैं तिलका के बराबर था। वही देखने गया था कुछ दिन के लिए। तभी देखा था बाहरी समाज के रीति-रिवाजों को। उनको मारने में पाप नहीं लगता। हम अगर अपने पर पड़ती मार रोकें तो डकैत हुए...क्या समझे ? तिलका समझ गया है। हम जानते हैं लड़ाई लड़ना। वे हमें कहेंगे, डकैत हैं। इसी वजह से तो यह सारी बातें बतायीं हैं तुम्हें।"

"सब समझ गया हूँ। दुख नहीं घटता। अगर बुरा न मानो तो कहूँ कि ज़्यादा देने की क्षमता तो नहीं है पर अपने गाँव से दो मन चावल दे सकूँगा। कुछ लोग भेज दो हमारे साथ।"

"दोगे ?"

"क्यों नहीं देंगे ? आज मैं दे रहा हूँ। हमारे कष्ट में तुम देना। दिन हमेशा एक-से थोड़े ही रहते हैं !"

"ठीक है। ऐसी ही करो। देखो, अब मेरे मन का मैल धुल गया है। मेरे मन में उठ रहा था कि सुंद्रा माझी हमारी बेवकूफ़ी पर हँस रहा होगा।"

"नहीं ! नहीं ! पहाड़िया—जंगलियाँ लोगों को विपत्ति में देखकर जब लोग हँसते हैं तो सर्वनाश होता है।"

पहाड़िया युवकों ने चार बँहगियों का जुगाड़ किया। चावल ले आये। दिन बीतते गये। तिलका को घने जंगल में जाना पड़ा। बड़ी दुष्ट गाय है। वहाँ घुस कर बच्चा जन रही है। संभाल कर लाना होगा। आदम-

क़द घास हैं यहाँ। वड़ी कड़ी है। जव सूख जाती है तो इस घास से छत वना लो, पानी नहीं टपकेगा। ऐसी घास में धारीवाला वाघ स्वच्छंद विचरता है। उसे देख तक नहीं सकते।

तुम वाघ नहीं देखते, लेकिन वाघ तुम्हें देखता है—कथा ऐसी है। ऐसे जगह में अगर गाय-वछड़ा जने तो क्या वे दोनों घर लौटेंगे? गाय चराते हैं इस गाँव के चार-पाँच किशोर। दूसरे किशोर पहरा देते थे। इस गाय में वहुत गुण हैं। पहला गुण यह कि जहाँ तक दृष्टि जाये, वहाँ तक चरना। दूसरा गुण यह कि वच्चा होने के सात-आठ दिनों तक तिलका के सिवाय दूसरे किसी को भी क़रीव नहीं आने देती। यह दुष्ट गाय सोमा को वड़ी प्रिय है।

तिलका वकता आ रहा था, "जाओगी दूर देश! वाघ के पेट में। तुम्हें वचायेगा कौन? अव चलो घर। लम्वी रस्सी से वाँध कर रखूँगा। जो दूँगा, वही खाना।"

अचानक लंवी घास हिली। वाघ है क्या?

वाघ नहीं, मनसा पहाड़िया है। उसके सर पर एक डोल है। वड़ा डोल। मनसा डोल लेकर वाहर आया।

"मनसा!"

"वाघ लगा था?"

"इस घास के जंगल में से चलकर कोई आता है भला?"

"वाघ का डर कहाँ रे! अच्छा ले।"

"क्या है?"

"नमक। सरदार ने भेजा है। चावल के वदले।"

"नमक?"

"हाँ। कंपनी का धंधा देखकर तू तो भड़क उठता है। वे रुपये के दो सेर चावल वेचते हैं अव। रुपयों का पहाड़ वना रखा है। आढ़तदार ने भी कम पैसे नहीं वनाये। रुपयों से नमक, गुड़—सव ख़रीद लाया है। आदमी पेड़ की छाल-लता-पत्ते पर ज़िंदा हैं। उसने एक नया आढ़त-घर वना लिया है। जितना भीतर जा सका कोठे के उतने भीतर तक घुस गया। सात-दस क़दम फलांगे। रूपी का लड़का मर कर लकड़ी हो गया था। उसी की वात

सोचकर सिर पर खून चढ़ आया। सब उठा ले आया।"

"पहरा नहीं था क्या ?"

"हमें देखकर सब भाग गये। आढ़तदार कैसा-कैसा नाच रहा था ! कूदता हुआ नाचता हुआ चीखता रहा, 'बाप मेरे ! सब मत ले जाओ।' एक लात मार कर उसे भगा दिया। फिर चावल-दाल सब आपस में बाँट दिया। रास्ते में ही। पर और किसे दूं ? गाँव में आदमी नहीं हैं। पहाड़िया समाज में बाँटना होगा। गाँव की हालत को अगर तू देखता...।"

तिलका धीरे से बोला, "आढ़त को जला क्यों नहीं दिया ? आढ़तदार तो छुप जाता, गोलादार को आगे कर देता।"

"कह रहा था, तुम डकैत हो गये हो ? मैंने कहा, अभी तो हम ही हैं, और भी आ रहे हैं। कंपनी का नाम लेकर कुछ कह रहा था। मैंने कहा, वह नाम अब ग़ायब हो गया है। बहुत हुआ।"

तिलका दुखी मन से बोला, "कंपनी ने जो कुछ खेतिहरों के साथ किया, क्या अब खेतिहर खेती कर पायेंगे ? उन्हें लगेगा कि कितना भी कष्ट करके फ़सल उगाओ, कंपनी उनकी फ़सल ज़बरदस्ती ख़रीद लेगी।"

"अपनी आँखों से नहीं देखा तुमने, तभी तुम अच्छे हो।"

अपनी आँखों से यह सब न देखो तो भी अब रहा नहीं जाता। तिलका का मन हठात विचलित हो उठा था। मनसा चला गया था। तिलका को लगा, जैसे कोई विपत्ति आ रही है, भयानक विपत्ति। सब-कुछ तो वही है, कुछ क्षण पहले जैसा था। वही वन, वही जंगल, वही घास। भैंसों के गले की घंटियाँ बज रही हैं। हवा में वन शिउली की गंध है। मनसा के लिए यह विपत्ति की सूचना है। मनसा पहाड़िया बदल गया है, सारे पहाड़िया बदल गये हैं। धोखे से, गड़बड़ी से, वे क्रुद्ध हो उठे हैं। मनसा ने ऐसी बातें कीं। वे तो कभी पहाड़ से हथियार लेकर उतरे ही नहीं। आज मनसा और उसके लोगों का जो रूपान्तर हुआ है, यदि ऐसा ही उनका ही हो गया तो ?

रास्तों में शव बिखरे हैं। गाँव निर्जन। कितने लोग मरे हैं ? तिलका गाय-बछड़े को लेकर, डोल सिर पर उठाकर घर की तरफ़ चलता रहा। चरवाहे लड़कों से उसने कहा, "तुम सब घर लौट जाओ। घास के जंगल

में आजकल बाघ ज़्यादा घूम रहे हैं।"

गाँव में घुसते ही उसने देखा रूपा को। तिलका बोला, "ले पकड़, इस नमक के डोल को। तो तेरी लाज-शरम ख़तम हो गयी है। मर्द के बगैर रह ही नहीं सकती ?"

"क्यूँ रहूँ भला ?"

दोनों हँसे।

और विपदा आयी।

एक दिन पहाड़ियो ने दिनमनि कुम्हार को मार डाला था। उन्हें यह डर था कि दिनमनि उनके आदिवासी जीवन में विदेशी घुसायेगा। पर यह युग खत्म होते-न होते कंपनी की नज़र पहाड़ियो पर पड़ गयी। नहीं, विद्रोह नहीं। उन्हें लगान चाहिए। दुगुना। बंगाल के सूबे के तीन भागों में एक भाग भूखा मर रहा है, बाक़ी दोनों उसे धान दें।

अब फ़क़ीर और संन्यासी भी विद्रोह कर रहे हैं। बीरभूम-बाँकुड़ा में लोगों ने हथियार उठा लिये हैं, लगान नहीं देंगे। मोदिनीपुर में चप्पे-चप्पे में विद्रोह भड़क उठा है। पहाड़ियों को रोकना ज़रूरी है। कंपनी का नाम सुनते ही वे क्रोधित हो उठते हैं।

फिर सुंद्रा के घर बच्चा पैदा हुआ। तिलका और रूपा का बच्चा। और जब वह बच्चा एक साल का हुआ तो पहाड़ की चोटी पर आग जलती दिखायी दी। 1772 में। कैप्टेन ब्रुक भागलपुर की छावनी में बैठकर कहता है, "पहाड़िये ! उन्हें ठंडा करना होगा ! यह क्या बात हुई ?"

अफ़सर ने कहा, "पहाड़ियो का दमन ज़रूरी है। हमें फ़ौज की एक छोटी टुकड़ी दीजिये।"

एक सौ सिपाही और असीम आत्म-विश्वास के साथ कैप्टेन ब्रुक ने जंगल की राह पकड़ी। घाटी में भैंस ख़रीदने गया था तिलका, वहीं उसे मालूम हुआ। उसने मनसा को ख़बर कर दी। फलतः पहाड़ की चोटी पर आग जली।

आग जली, आग जली।
साहेब आया घोड़े पर,
खटखट खटखट खटखट।

आग जली आग जली,
साहेब आया घोड़े पर
खटखट, खटखट खटखट।
पट्टी है पैरों में सिपाहियों के,
पेटी है कमर में सिपाहियों के,
खटखट खटखट खटखट।
हो ! तिलका मुर्मू हो !
तीरों पर सान दो
हो ! मनसा हो !
हम तुम्हारे औरत-बच्चों को
लेकर जाते हैं।
काट दो, खटखट, काट दो।

पहाड़िया मर्द तीरों पर फलक चढ़ाने लगे। तिलका, गोपी, चाँदो वगैरह सब मिल कर पहाड़ियो के बच्चे, बूढ़े और औरतों को ले आये।

तिलका ने पूछा, "हम भी आ जायें क्या, मनसा ? क्या कहते हो ?"

"अगर हम नहीं संभाल पाये तो बुला लेंगे। आग जला देंगे।"

तितापानी नाला के पास आकर ब्रुक और उसके सिपाहियों ने नाला पार किया। बालू और पत्थर। जंगल शुरू। अचानक पचासों नगाड़े बज उठे। फिर लगातार तीर छूटने शुरू। सिपाही एक सौ, दस बंदूकें। बाक़ी तलवार। ब्रुक गोली चलाता था और चिल्लाता था, "गोली चलाओ। गोली चलाओ !' गोलियाँ हवा में चलती रहीं। तीर हवा चीर कर आते थे। सिपाही मरते रहे। तीर सीने में। तीर पसलियों में। तीर का फलक और पिछला हिस्सा वज़न में बराबर होते हैं। अचूक और स्थिर निशाने पर आते तीर को रोकना कठिन होता है। कई सिपाही गिर गये, कई भागने लगे। ब्रुक चिल्लाया, "जो भागेगा उसे गोली मार दूंगा !" लेकिन तभी ब्रुक घोड़ों की पसली में भी तीर आ घुसा। दर्द से तड़पता घोड़ा उछलता रहा। फिर ब्रुक भी ख़त्म। गरदन-कटे सिपाही भागते रहे। जंगल से प्रबल जयोल्लास की ध्वनि ! पहाड़िया धनुष उठाये बाहर निकले ! एक भी सिपाही नहीं है। घृणित 'कंपनी' का नाम ख़त्म। कोई दया

नहीं। काट दो; खटाखट। कई सिपाही भागे। तितापानी नाले का पानी लाल हो गया।

तितापानी का पानी लाले लाल—ल
तितापानी के पत्थर लाले ला—ल
तितापानी का बालू लाले ला—ल !

नगाड़े बजते रहे।

पहाड़ियों ने एक अंतराल के बाद स्वस्थ महसूस किया। खोया दर्प लौट आया। आनंद और उत्सव। संथाल आये। जंगल-इलाक़े में आनंद। मनसा के बाप ने सुंद्रा से कहा "दुख के दिन कट गये।"

सुंद्रा बोला, "मैं एक बात कहता हूँ। इस बार ज़रा मन लगाकर खेती-बाड़ी करो। खेती-बाड़ी से समाज बँधा रहता है। हमें भी शक्ति मिलती है।"

आज आनंदोत्सव है। सब हँस बोल रहे हैं।

तिलका ने मनसा से कहा, "अब सावधान रहने का समय है। वे मार खा कर गये हैं, फिर मारने आयेंगे।"

"हम फिर मारेंगे।"

"हमें लोगों को तीर चलाना, गुलेल चलाना सिखाना होगा, खूब अच्छी तरह से। तीर-खेल पर्व होता था कभी। उसे फिर से मनाना होगा।"

"वे क्या फिर मारेंगे ?"

"तो क्या छोड़ देंगे ? जो ऐसे अकाल ला सकते हैं, भूखे-नंगों से लगान वसूल सकते हैं, वे सहज ही मार नहीं भूलते।"

अंगरेज़ भूले नहीं, कुछ भी नहीं भूले। 1772 के साल में ब्रूक आया था। तब से ही कंपनी के राज-कर के नाम पर जमीन का जुआ शुरू हुआ। और विद्रोह भी। बगड़ी में जदूसिंह, घाटशिला-धनाभूमगढ़ में जगन्नाथ धल का विद्रोह, बराभूम में पाइक सरदार का विद्रोह। मयूरभंज-पातकूम में विद्रोह। विद्रोह हर जगह, जंगल के हर कोने में। ज़मींदार जदूसिंह जैसे विद्रोही, वैसे ही पाइक भी हैं, उनके सरदार भी।

राजमहल के जंगलों में तिलका लोगों को इतनी जानकारी नहीं थी।

1774 में हाहाकार मचा। खूब वारिश, झंझावात। पेड़ टूटे—पत्थर लुढ़के। तितापानी की धारा फूल कर दोनों किनारे तोड़ गयी। ऐसे तूफ़ान में रतनमनि कुम्हार की छत टूट गयी। वे आये तिलका के घर। तूफ़ान की गर्जन और हाथियों की तीव्र चीखें भी समवेत स्वर में सुनायी देती थीं।

तिलका की मां वोली, "देवता सव मंगल करें, पूजा करूंगी, पूजा करूंगी।" फिर वहू से कहा, "रूपा! इस वीच वच्चे न पैदा करना, वेटी! थोड़ा धैर्य रखना।" रूपा मचान के नीचे जा सो रही। तूफ़ान में छोटी-छोटी चीज़ें उठाने-रखने लगी। तभी उसके पेट में दर्द शुरू हो गया था।

रतनमनि की पत्नी गयी, उसके पेट की मालिश करने। तेल गरम किया। तिलका के पास रहने के लिए दो घर हैं। लेकिन आज दुर्योग से सव एक ही घर में वैठे थे। थोड़ी देर के वाद सभी को चुपचाप देखकर सोमी ने धीरे-धीरे कहना शुरू किया, "जव तिलका इतना-सा था, तव क्या गज़व का तूफ़ान आया था, क्या वताऊँ! क्या वारिश! कुर्थी, दाल कुछ भी वटोर नहीं पायी। सवेरे देखा, दाल भीग कर भात वन गयी है। गोहाल की छत खेतों में पड़ी है।"

सुंद्रा वोला, "ज़रा रुक! देखूं, कौन रो रहा है?"

रोयेगा कौन? हवा रो रही थी। तव वच्चे को पीठ से वाँधा। वाहर आकर देखा। कौन रो रहा है?

रतनमनि की वहू वोली, "देवर, ज़रा वाहर जाओ। तिलका, तुम भी। सारे मर्द वाहर चले जाओ। मझली दीदी, तुम इधर आ जाओ। लगता है, रूपा को दर्द शुरू हो गये हैं।

'हें! दर्द शुरू?"

सारे मर्द कानों पर हाथ रख कर गिरते-पड़ते वाहर दीवार से लग कर खड़े हो गये। वंद घर में आग जलाने का शब्द, चकमक पत्थर की आवाज़। तभी विजली चमकी। एक सियार भागा उठान की तरफ़। गोहाल में गायें डर से चिल्लायीं।

सुंद्रा तेज़ आवाज़ में वोला, "गाय, भैंस दूसरे घर में वंद करनी होंगी, रे तिलका!" रतनमनि, तिलका और सुंद्रा भागे। जिस घर में खर है, धान के डोल हैं और जो सुंद्रा और सोमी का घर है, उसी में भीगे पशुओं को ले

जाया गया। फिर सभी ने कान बंद कर लिये। बिजली गिरी है कहीं पास।

रतनमनि कहने लगा, "यह कैसी विपत्ति है, रे बाप! यह सब उस कुम्हार बूढ़ी के कारण हुआ। पानी नहीं तो फ़सल नहीं। पानी नहीं, फिर भी फ़सल सुखाती थी इंद्र राजा को बुला-बुला कर। तभी इंद्र खुश होकर पानी डाल रहा है।"

कैसा दुर्योग!

सुंद्रा बोला, "तितापानी की धारा यहाँ तक तो फैलेगी नहीं। नीचे सबको डुबा देगी।"

तिलका बोला, "लगता है, पहाड़िया गाँव गया।"

बातें करते-करते समय बीतता रहा। तूफ़ान का वेग कम हुआ। जब सबेरा हुआ तो बारिश चल रही थी। सोमी ने दरवाज़ा खोला। बोली, "लड़की हुई है रे...ख़ू...ब सुंदर। माँ जैसी।"

बड़ी देर के बाद धूप निकली। तिलका की कमर जैसे टूट गयी थी, घर में से पेड़-पत्ते साफ़ करने और गाय बाहर निकालने में। सोमी रतनमनि की पत्नी के निर्देश पर काला जीरा और मिर्च पीस रही थी। गरम भात के साथ उसे मिला कर खाया रूपा ने। फिर वह सो गयी। सुंद्रा ने पुरोहित को ख़बर दी और नायक को भी कि सारे गाँव को सूतक लगा है। नायक के स्नान करने पर ही सब शुद्ध होंगे।

शाम तक तेज़ धूप हो गयी। कौन कह सकता था कि दो दिन तक यहाँ प्रलय चल रहा था? तिलका को समय ही नहीं मिला रूपा की ख़बर लेने का। सोमी का काम तो जैसे ख़त्म ही नहीं होता था। आज गप्पबाज़ी का समय भी नहीं मिला। चारों तरफ़ टूट-फूट मची है।

शाम को तिलका बोला, "आयु, धान-दाल कल धूप में डालना। मैं मदद कर दूंगा।"

"नहीं। ले, तू बच्चा पकड़।"

तिलका बच्चे को लेकर दरवाजे पर खड़ा हो गया। रूपा लड़की को गोद से चिपटाये सो रही है। सोये। तिलका सारे दिन व्यस्त था, रूपा जानती थी। रूपा अगर ठीक होती तो सोमी के साथ भाग-दौड़ करती।

लड़की ! तिलका का मन खुश हो गया ।

लड़की के जन्म के तुरन्त बाद रूपा फिर से माँ बनी। कैसे ?

इस तूफ़ान में चाँगी धानुक के घर से रोने की आवाज़ उठी थी। धानुकों के छै-सात घर थे। रास्ता-बाज़ार जैसी सुविधाओं के लिए वे सब आड़ा-बुरु चले गये थे । सिर्फ़ मंगल और राधी नहीं गये । राधी चार दिन के बच्चे को लेकर सो रही थी । तीन बरस की लड़की और मंगल बग़ल के कमरे में थे । कभी सुना है ऐसा ! पेड़ की डाल गिरी, मरे सिर्फ़ मंगल और राधी । बचे सिर्फ़ लड़का और लड़की । मंगल की माँ खोहाँड़ में थी । सूअर-बकरी लेकर गयी थी । उनका रोना आकाश को चीरने लगा । रोना बंद हुआ तो प्रश्न उठा कि यह बच्चा अब बचेगा कैसे ? गाँव में किसके यहाँ बच्चा है ? किसकी छाती में दूध है ? सोमी ले आयी बच्चों को । रास्ते-भर गालियाँ देती आयी ।

"छोटे-छोटे बच्चे । कुम्हार नहीं लेते, कमेरे नहीं लेते, उनकी जात का नहीं है । क्यों ? यह क्या बात हुई ? कैसा समाज है ? मैं रख लेती हूँ । हाँ, मेरी बहू की छाती दूध में है । एक और बच्चा सही । ले रूपा ! दूध पिला दे इसे भी ! वरना मर जायेगा रे !"

रूपा ने तुरंत दूध पिलाया । राधी का बच्चा कुछ देर माँ-माँ करके रोता रहा और फिर दूध पीकर सो रहा ।

तिलका और रूपा हँस-हँस कर निहाल हो गये । दो लड़का लड़की थे, अब चार हुए । मंगल की माँ तीन-चार दिन दरवाज़े पर बैठी रही । फिर बोली, "आड़ाबुरू जा रही हूँ, दीदी !"

"क्यों, क्या हुआ ?"

"बेटे-बहू का श्राद्ध करना है ।"

"यहाँ नहीं, हो सकता ?"

"यहाँ ? नहीं दीदी । वहाँ जाति के लोग हैं। वे ही जो करेंगे, करें ।"

"जा । लौटेगी कब ?"

"बस, लौट आऊँगी ।"

जाते वक़्त बुढ़ी, सूअर और बकरी साथ हाँक कर ले गयी। उन्हें बेचकर श्राद्ध करेगी। वह जो गयी तो फिर नहीं लौटी। जैसे ग़ायब हो गयी हो।

तिलका बाद में समाचार लाया, "हाँ, गयी थी गांव में। उनके समाज ने सूअर और बकरी के बदले श्राद्ध-शांति कर दी। फिर कहा कि बच्चों को ले आओ, हम पाल-पोस लेंगे। उन्होंने विपत्ति झेली है, आदमियों की-सी बात की है। तुम दादी का काम करो।"

"ले आती हूँ," कहकर बुढ़िया चली। नहीं, उसे बाघ ने नहीं खाया। वह गांव में आयी घाटी की तरफ़ से। बच्चों के बारे में उसने क़तई नहीं सोचा। सोचा यह है कि अब भीख मांगेगी और घूमेगी।

तिलका को विशेष परेशानी नहीं हुई। धानुकों ने कहा है, "वे इन बच्चों को ले जायेंगे।"

"क्यों?"

"बहुत दिन रखा तूने।"

"मेरी चिंता तुम्हें करने कोई जरूरत नहीं।"

"नहीं...वह...।"

""वे बच्चे अपने माँ-बाप को नहीं जानते, हमें जानते हैं।"

"ठीक है, उसके बच्चे मेरे बच्चों की तरह तीर-धनुष पकड़ेंगे।"

"लड़की?"

"अपनी लड़की की तरह ही उसकी शादी होगी।"

"तू तो वट-वृक्ष है। तेरा आश्रय...।"

तिलका ने अपने खून के बच्चे का नाम रखा, सोमा। दत्तक का नाम बुधा रखा। अपनी लड़की का नाम गिरि और दत्तक बेटी का नाम मति रखा। चारों बच्चों को सुविधाएँ भी खूब मिली हैं। दिन-भर खेलते हैं। सुंद्रा और सोमी का भरा-पूरा संसार है।

तिलका और रूपा दस हाथों से मेहनत करते हैं। खेत में दोनों मिलकर काम करते हैं। तिलका शिकार करता है और रूपा तितापानी से मछलियाँ पकड़ती है। दोनों मिलकर धान काटते हैं। तिलका के जीवन में ऐसी पूर्णता कभी नहीं थी।

तमाम समाज को वांध कर रखने की व्याकुलता भी तिलका में है। सुंद्रा से कहा, "शिकार-पर्व की बात उठाओ। तुम गाँव के माझी हो। हाट में चावल का दाम ख़रीदने पर ज़्यादा देना पड़ता है। फंदे में पैर मत दो।"

"कहूँगा।"

"हाट का नया गोलदार कहता है कि रुपये से चीज़ें ख़रीदो। हम पैसे से नहीं ख़रीदेंगे। हम तो धान-चावल ही देंगे। वही इतने दिनों से देते आये हैं। कहता है—यह नियम अब उठ गया है।"

"यह कहता है?"

"हाँ आपूंग, यही कहता है। उसे मैंने बताया कि मेरा नाम तिलका मुर्मू है। मैं क्या हूँ, यह लोगों से पूछ लेना।"

"कुछ गड़बड़ी ज़रूर होगी।"

"कहता है कि ज़मीन पर लगान लगाया था कंपनी ने। उसी को लेकर जंगल-इलाक़े में लड़ाई चल रही है।"

"कहाँ-कहाँ?"

"अनेकों जगह। कहता है कि तुम्हारे जैसे लोग यदि कंपनी के सिपाही बन जायें तो बहुत रुपये मिलेंगे...बहुत। हम नहीं मानते यह बात। देखेंगे कि कैसे जुल्म करते हैं?"

"तू माझी बन जा। मैं अब ज़्यादा दिन नहीं जीऊँगा। इतनी बातें मैंने कभी नहीं सोचीं। जंगल में रहते हैं, यहीं खेती करते हैं। पूजा-पर्व संभालूँगा—समाज का भला-बुरा देखूँगा। मेरी आँखें गाँव से ही बँधी रहती हैं। तेरी आँखें...तेरा मन समाज की बातें सोचता है।"

"नहीं, आपूंग! तेरे रहते नहीं बनूंगा।"

"तिलका! मेरे तिलका! तूने देखा था सपने में राजहंसिनी को। मैंने नहीं। वह जगह न पाकर तेरी छाती पर बैठी, मेरी छाती पर नहीं। वह बात मैं अभी तक नहीं भूला।" तिलका हैरान रह गया।

"तिलका! हाट में मैं भी जाता हूँ। मुझे भी कहते हैं कि तुम सिपाही बन जाओ। तुम्हें भी कहते हैं। संथाल सिपाही नहीं बन सकते। सिपाही बने और बनकर संथाल, पहाड़िया, धानुकों को मारें क्या?"

"यही तो मैं भी कहता हूँ, आपूंग!"

संथाल कभी सिपाही नहीं बने। पहाड़िया बन गये। बड़ी दुख-भरी घटना हुई यह। यह याद करके तो तितापानी की धार रो देती है। शाल-पेड़ से दुख झरते हैं। इलाक़े के कोने-कोने से रुदन सुनायी देता है।

तिलका की छाती फटने लगती है।

6

1772 में आया था कैप्टन ब्रुक।

1773 में राजमहल का सुपरिंटेंडेंट बना ऑगस्टस क्लीवलैंड।

1773 से ही क्लीवलैंड पहाड़ियो पर नज़र रखे था।

1775 में उसने भागलपुर के कलेक्टर से कहा, "मेदिनीपुर और दूसरी जगहों पर ज़मींदार पाईक और चुहाड़ों को कैसे वश में करते हैं, यह सीखने की बात है।"

"कैसे?"

"सिपाही बनकर, बंजर ज़मीन देकर।"

"सिपाही किसे बनायें? सिर्फ़ पहाड़ियो को? अरे, संथाल भी तो हैं। वे अनगिनत हैं। वे अधिक संघ-बद्ध हैं। हमने सबसे धान-चावल ख़रीदा है। पहाड़ियो से भी। संथालों ने नहीं बेचा धान-चावल। पहले कुछ बेचा था, लेकिन फिर बंद कर दिया।"

"पहाड़िया व संथाल क्या मित्र हैं?"

"समझौता है उनके बीच।"

"तोड़ना होगा उसे।"

"कौन तोड़ेगा?"

"हम।"

"हम तो उनके दुश्मन हैं।"

"वही कहते हैं न दुश्मन। सो क्या हुआ? उनका दोस्त बनना होगा। वे सीधे लोग हैं। स्वभाव से ही सब पर विश्वास कर लेते हैं। इसी का सुयोग खोजना होगा।"

"फिर क्या करोगे?"

"पहाड़िया संख्या में कम हैं। उन्हें समझाना सरल है।"

"मानेंगे ?"

"देखा जायेगा !"

1779 में क्लीवलैंड भागलपुर का कलेक्टर हुआ। मुनादी पिटवा दी गयी। पहाड़िया सरदार के पास साहेब-सरदार का नज़राना गया—बड़ी बकरी, चावल और घी। पहाड़िया चौंके। पर दूत को मारा नहीं जाता। हथियार नहीं लाये हैं, भेंट लाये हैं—साहेब-सरदार की भेंट।

फिर आया खुद क्लीवलैंड। बोला, "हथियार नहीं लाया हूँ। बातें करने आया हूँ। पहले कंपनी ने बड़ी धाँधली की है। कम दाम में चावल ख़रीदा, तुम्हें लूटा। यह सब-कुछ दुष्ट करते रहे, कंपनी के नाम पर। कलकत्ता में बैठी कंपनी सब-कुछ जान गयी है। इसीलिए मैं आया हूँ। साल में दो बार सरदार के साथ भेंट करूँगा। सब आरोप सुनूंगा। मैं तुम्हारा दोस्त हूँ।"

ठीक है। क्लीवलैंड मित्र है। पहाड़ियो ने नाम दिया चिलीमिली साहब। चिलीमिली साहब ने बैठकें की। चिलीमिली साहब आता था पूजा-पर्व पर।

तिलका बोला, "यह सब अच्छा नहीं हो रहा, मनसा !"

"नहीं, क़तई नहीं। यह अच्छा आदमी है।"

साहब पहाड़ियो को दोस्त बनाकर जंगली इलाक़े में घुस आया। संथालों के बारे में भीतरी ख़बरें भी उसने बातों-बातों में ही जान लीं।

फिर बोला, "तुम जैसा वीर कौन है ? हाँ, अगर तुम सिपाही बन जाओ तो तुम्हारी प्रतिष्ठा और बढ़ जायेगी।"

धीरे-धीरे बात चलती रही। कंपनी की तरफ़ से पहाड़िया सरदारों को मिला 10 रुपये का भत्ता। पहाड़िया माझियों को मिला दो रुपया। नीला कपड़ा, लाल पगड़ी। चार सौ पहाड़िया कंपनी की फ़ौज में भरती हो गये। उस दिन सभी पहाड़िया गाँवों में उत्सव हुआ।

सुंद्रा ने कहा, "मौत के नगाड़े बज रहे हैं, तिलका !"

सुंद्रा बिस्तर पकड़ चुका था। उसे बुख़ार था। बुख़ार तो हलका ही था, पर पहाड़िया कंपनी के दोस्त हो गये हैं, इसी का गहरा धक्का लगा था।

सुंद्रा भविष्य को साफ़-साफ़ देख रहा था।

"सब देख रहा हूँ मैं," वह रुँधे स्वर में बोला।

"क्या देख रहे हो, आपूंग ?"

"सब तरफ अँधेरा, धुआँ-धुआँ, आँधी-भरा आकाश।"

"और क्या ?"

"तू इस जंगल के कंधे पर घूम रहा है। तेरे सिर पर जंगल और अनेकों लोग हैं।"

"और, क्या ?"

"हमारी प्रथम आयु राजहंसिनी तेरे सिर पर है।"

सोमी ने आँखें पोछीं। तिलका से बोली, "नायक को ख़बर कर दे। पूजा की व्यवस्था कर। मैं जाहेर-थान जाऊँगी।"

जाहेर-थान में पूजा हुई। कार्तिक में धान-खेत लहलहा रहे थे। तिलका के बच्चे पंछी भगा रहे थे।

गाँव के पाँच लोगों को बुलाकर तिलका को माझी मनोनीत किया गया। गाँव-समाज और तिलका के सिर पर हाथ फेर कर सुंद्रा ने आँखें बंद कर लीं। कह गया, "नीला कपड़ा, लाल पगड़ी तुम सब लोग कभी मत पहनना। कंपनी वार करेगी। तिलका की बात मानना तुम सब।"

सुंद्रा की मौत पर तमाम गाँव जैसे टूट गया। कुम्हार-ठठेरे सभी जाति और वृत्ति के लोग रोये। सुंद्रा की मौत का अर्थ था एक प्राचीन युग का अंत। तिलका उस समय भी कुछ नहीं जानता था।

कई दिन बाद मनसा और उसका बाप आये। सरदार की आवाज़ में शिकायत और दर्द था—"सुंद्रा चला गया, मुझे पता तक नहीं चला।"

कितने दिनों से कितने ही लोग आ रहे हैं। तिलका शांत है, क्षुब्ध, विमूढ़।

"बताया नहीं, बताने वाली बात ही क्या थी ?"

"मेरे समय का आदमी था। हम सम्मान देते थे। वह आज चला गया। समाज के हर दुख-दर्द का साथी था। उम्र कुछ कम थी, पर बुद्धि और मन से वह राजा था। अपनी बुद्धि से उसने कितने ही तूफ़ानों से बचाया था। उस दिन भी कह रहा था—खेती-बाड़ी में फिर से मन

लगाओ। समाज को खेती से बांधकर रखो। हमारे समाज के अच्छे दिन आ गये हैं। चिली-मिली साहेब ने हमारे लिए बहुत किया। यह सारी बातें अब किससे कहूं ? क़रीब बैठने का सुयोग हमें सुंद्रा मुर्मू ने नहीं दिया।"

उठान में बैठे संथालों ने, माझी और दसमाझी तथा परगनायेत—सभी ने एक साथ सरदार की तरफ़ देखा, फिर तिलका की ओर। तिलका खड़ा है कुछ दूर पर, आम के पेड़ के सहारे। उदास आंसुओं भरी लाल आंखें लिये बैठा है रतनमनि। सब एक ही बात सोच रहे हैं। लेकिन उलझे बाल वाला गम्भीर और शांत तिलका सबकी तरफ़ देख रहा है। फिर बोला, "हम अभी सूतक में हैं। तेल-नहान नहीं हुआ है। कौन किसे ख़बर दे ? हमारे सिर से आकाश उठ गया है, पैरों तले से जमीन।"

"हाँ, वह तो है," पहाड़िया सरदार ने दुख प्रकट करते हुए कहा। यह दुख छल नहीं था। वह समझ नहीं पा रहा था, यहां बैठे संथाल उसे और उसके लड़के को नीला-लाल कपड़ा पहनने पर मन-ही-मन धिक्कार रहे हैं। मनसा समझ गया। वह कनखियों से तिलका को देखता रहा। वह समझ रहा है। यह शांत धिक्कार उसे कुरेद रही है। आज फ़ैसले का दिन नहीं है। बोला, "बाबा, अब चलो। यह इनके काम-काज का समय है। तिलका, कुछ ज़रूरत हो तो बताना। हम और तुम साथ हैं। यही तुमसे सुना है, माझी से सुना है।"

"बताऊँगा।" तिलका के होठों पर शुष्क हँसी है। मनसा चला गया।

यदू परगनायेत बोला, "कंपनी की पोशाक बड़ी अच्छी लगती है। अब तो कपड़े मिलते ही नहीं।"

तिलका बोला, "हाँ, नीले कपड़े और लाल पगड़ी।"

दिन बीते। महीने बीते। बाप के न होने के कारण तिलका उदास है। पर उसने काम-काज में मन लगा लिया। उत्तरदायित्व का भारी बोझ है सिर पर।

बाबा ने कहा था—गहन अंधकार धुआँ, आँधी-भरा आकाश। तिलका अपने दोनों हाथों में जंगल को पकड़े चल रहा है—जंगल, खेत, आदमी। उसके ऊपर उड़ रही है आदि-माता राजहंसिनी। क्यों कहा था उसने ऐसा ? जंगल की गोद छोड़ कर संथाल क्या फिर से यायावर हो जायेंगे ?

'कहाँ जायेंगे संथाल ? कौन-सी आँधी आ रही है जिसकी प्रचंडता से यह अरण्य-आश्रय छिन जायेगा, धान खेत और शिकार छिन जायेंगे ?

'आहिड़ि पिड़ि से शशाँग वेडा,
शशाँग वेडा से जापि,
जापि से आहिरि,
फिर केन्यी-छाई,
फिर चम्पा,
फिर साउन्त ।

'आदि-माता के डैनों से कौन-सी आँधी आयेगी ? संथालों को अपने साथ लेकर तिलका कहाँ जायेगा ?

'आपूंग ! आपूंग ! तुम्हें हर जगह, धान की गंध में, शिकार के सुख में, खर की आग में, भुट्टे सेंकने में, माँ की दुखी काली आँखों में, रूपा की छाती में—हर जगह पाता हूँ ।

'तुम अपनी आँखों से क्या-क्या न देख गये ! पहाड़ियों को कंपनी ने धोखे से जीत लिया । तुमने उनका भविष्य देख लिया था ।'

जंगल से ज़मींकंद लेकर आते समय तिलका यही सोच रहा था ।

"रे तिलका हो !"

मनसा पहाड़िया ! ख़ाली धोती, नंगा वदन, तीर से बिंधा साँप । साँप को फेंक दिया उसने पूंछ पकड़ कर । वह मर गया था । मनसा सामने आया ।

"क्या है, मनसा ?"

"तिलका, बहुत जरूरी बात कहनी है ।"

"मुझसे ? तेरी ज़रूरत तो कंपनी देख रही है । मुझसे क्या ज़रूरत आन पड़ी है ?"

"हज़ार बात कह डाल । पर मुझे भी तो बोलने दे ।"

"क्या कहूँ ? पहाड़िया स्वाधीन, पहाड़िया लड़ाकू, पहाड़िया हमारे गौरव थे । वह गौरव क्यों छीन लिया तूने ? नीला कपड़ा, लाल पगड़ी, कंपनी का सिपाही । एक दिन सिपाही आये थे तुझे मारने, लेकिन तुमने सिपाही ही मार डाले । आज जब तुम सब सिपाही हो गये हो तो हमारे

जैसों को मारोगे। चांडि धानुक मारोगे।"

"बोल, और बोलता जा।"

"कंपनी जिसे कहेगी उसे तुम मारोगे।"

मनसा सूखी हँसी हँसता हुआ बोला, "मैं इतनी बातें नहीं जानता। कंपनी ने भयानक खेल खेला था। पहले चिलीमिली साहेब ने दोस्ती गांठी। फिर रुपये, कपड़े-पगड़ी दी। फिर सिपाही बनाकर हमें तुमसे अलग कर दिया। जो सिपाही बने, वे कहां गये, पता नहीं।

"कहीं दूर गये हैं। पहले लगता था कि धरती का मतलब जंगल होता है। तब नहीं जानता था, लेकिन अब जानता हूं कि धरती बहुत बड़ी है। इतनी बड़ी धरती पर वे किसे मार रहे होंगे, पता नहीं। वे कंपनी के सिपाही जो ठहरे।

"और भी बातें हैं। तेरी बस्ती के नीचे वाले इलाके की। चिलीमिली साहेब कहता है कि इस इलाक़े का नाम रखेगा दामिन-ए कोह। जो-जो उसने कहा है, सभी कुछ बताऊंगा, ज़रा ठहर तो। भागलपुर, मुर्शिदाबाद, वीरभूम—कितनी ही जगहें दख़ल कर ली हैं। हमें वहां जाने को कह रहा है। राजमहल के पच्छिम में आबादी बसायेगा। हमने कह दिया है कि संथाल-बस्ती से हमारा कोई झगड़ा नहीं। हम घाटी से नीचे नहीं उतरेंगे। दामिन-ए-कोह में भी नहीं जायेंगे।"

"और क्या कहा है ?"

"उसने अपना असली रंग दिखाया है। दामिन-ए-कोह में जाने पर पहाड़ियो को कर देने की जरूरत नहीं। पर संथालों से वह लगान जरूर लेगा बिलकुल नहीं छोड़ेगा।"

"और भी कुछ कहा होगा ?"

"सारी बातें देख-समझकर वह और पहाड़ियो को भी सिपाही बनायेगा। उसने कितना लालच दिया है, क्या बताऊं ! संथाल बदमाश हैं, वे झगड़ा करते हैं। संथालों की बात पर हम कंपनी से क्यों लड़ाई मोल लेते हैं ?"

"तुम—तुम लोगों ने क्या कहा ?"

"मेरा बाप और दूसरे सरदार अब सब-कुछ समझ गये हैं। जो सिपाही

हो गये, उन्हें छोड़ो। लेकिन अब रुपये नहीं लेंगे। कपड़े-पगड़ी लौटा देंगे।"

"लौटा दिये क्या?"

"हाँ।"

"सब किया मनसा, लेकिन अब? जंगल के इलाके में तुम लोगों ने कंपनी को घुसा दिया। तब कहीं जाकर उलटी बुद्धि सीधी हुई है। अब क्या होगा?"

"वे फ़ौज ले आयेंगे। ज़बरदस्ती लगान लेंगे।"

"तुम क्या करोगे?"

"दूसरों की बात नहीं जानता। पर मैं तीर के फलक पर धार दूंगा। मधु भी साथ देगा और मदन भी।"

लेकिन उस समय भी मनसा या तिलका नहीं जानते थे कि यह सब कितना मुश्किल हो जायेगा। उनकी ज़िंदगी सीधी-सहज लीक पर चलती थी। लेकिन कंपनी अब उसे चलने नहीं देगी। ग्रामीण जीवन, आदिवासी जीवन—सभी प्रकार के जीवन का आधार तोड़ देगी वह। इंग्लैंड में नये-नये धंधे शुरू हो रहे हैं। भारत के ग्रामीण समाज को तोड़कर, धान के खेतों को उजाड़ कर शोषण की बेड़ी डाल देंगे ये अंगरेज़। उन्हें चाहिए कच्चा माल। अंगरेज़ों के इस कारोबार में सहायक होंगे—ज़मींदार, अमला और महाजन।

तिलका और मनसा समझ नहीं पा रहे। उनके चारों तरफ़ ठंडी हवाओं के झोंकों से पत्ते झर रहे थे, कठविलाव भाग रहे थे। झुंड-के-झुंड पक्षी डैनों से आकाश चीरते चले जा रहे थे। भागीरथी की दूसरी तरफ़। वे इसी तरह, एक ही रास्ते से जाते हैं हर वर्ष। तब भी मनसा या तिलका यह जान नहीं पाये कि संथाल-समाज के सीने पर चोट करके जिन पहाड़ियो ने कंपनी से दोस्ती की है, वे ही 1789 में ठीक एक बरस बाद विद्रोह करेंगे। फिर 1855-56 में कुछ पहाड़िया सिपाही कंपनी के साथ आयेंगे लड़ने संथालों से और हवा में गोलियाँ छोड़ कर चले जायेंगे।

मनसा और तिलका कुछ नहीं जानते थे।

मनसा बोला, "तीर पर धार दूंगा।"

तिलका बोला, "फिर?"

"तुम्हारे पास चला आऊँगा।"

"ठीक है, यही कर।"

"तू क्या करेगा ?"

"गिरह भेजता हूँ। सभी को बताता हूँ। तूने जो बताया, सभी को बताऊँगा।"

तिलका ने 1780 के शुरू में गिरह भेजी थी। तितापानी की धारा पथरीले रास्ते से होकर जाती थी। वहीं पत्थर पर खड़े होकर तिलका ने कहा था, "मैं तिलका माझी, दसमाझी या परगनायेत नहीं हूँ। पर मैंने गिरह भेजी है। मेरे सपने में आदि-आयु बार-बार आती है, मेरी छाती पर बैठती है। इसी से मुझे साहस मिला है। हमारे ऊपर बड़ी भारी विपत्ति आने वाली है। कंपनी हमसे जबरदस्ती कमर-तोड़ लगान लेगी। लगान दोगे तुम सब। तुम कंपनी की प्रजा जो ठहरे।"

जदू परगनायेत उठ खड़ा हुआ, "प्रजा ? हम किसी की प्रजा नहीं हैं। राजा आये, राजा गये, हमने किसी को कर नहीं दिया। किसी ने हमसे कर नहीं लिया। क्यों ? अजगरों को काट कर हमने ज़मीन हासिल की है। कोई हमारे जैसा नहीं। भले ही और लोग लगान दें और भूखे मरें।"

"नहीं, हमसे ख़ज़ाना नहीं लिया। मनसा की बातें सुन कर मैं श्यामसिंह घटवार के पास गया। श्यामसिंह ने कहा—'कंपनी का सदर आफ़िस कलकत्ता है।' कंपनी खज़ाना-खज़ाना चीख़-चीख़ कर पागल हो गयी है। यह घटवार हमारा परिचित है। उसने बताया कि अब नया बंदोबस्त हुआ है। दस-साला बंदोबस्त। अब कंपनी कर लेगी ज़बरदस्ती। अपने समाज के सभी लोग इस समय यहीं हैं। अपनी-अपनी बताओ, खज़ाना दोगे ? कंपनी की प्रजा बनोगे ? सोच कर बोलना।"

महर खड़ा हुआ। इस समय वह उसका ससुर नहीं और तिलका उसका दामाद नहीं। यह दूसरी जगह है, दूसरा संबंध है। महर ने क्रोध से कहा, "माझी, तिलका माझी ! यह तुम क्या बक रहे हो ? इसी के लिए शाल-गिरह भेजी थी ? कौन संथाल हाँ करेगा इस बात के लिए ? मैं उसी को देखना चाहता हूँ।"

"मैं 'ना' कहता हूँ। खज़ाना नहीं भरेंगे।"

"हम भी नहीं देंगे। कभी नहीं देंगे।"

"तब हमला होगा।"

"हम लड़ेंगे।"

"लड़ाई का उत्तरदायित्व कौन लेगा?"

"तुम लोगे! तिलका माझी, तुम लोगे! तुम्हें आज से हमने नाम दिया, बाबा तिलका माझी! तुम भार लोगे। तुम्हारे ही सपने में आयी है हमारी आदि-जननी! तुम्हारी छाती पर बैठी। क्यों? उसे पता है कि पिलचू हाड़ाम-पिलचू बूढ़ी की संतानों को कष्ट होगा। तभी, हाँ तभी उसने तुम्हें सपना दिया।"

"ठीक है! मैंने स्वीकार किया। अगर हमला हुआ तो लड़ेंगे। तीर के फलक बनाओ। गुलेल भी हमारा ज़बरदस्त हथियार है।"

घर लौटते-लौटते तिलका को रात हो गई। लेटते ही सवेरा हो गया। सवेरे उसने देखा कि रूपा एकटक उसकी तरफ़ देखती हुई खड़ी है।

"क्यों रूपा, क्या बात है?"

"देख रही हूँ।"

"पहले नहीं देखा?"

"बाबा तिलका माझी नहीं देखा इससे पहले।"

"दुख के दिन आ रहे हैं।"

खेत-उठा पर्व, मा-माड़े पर्वों के दिन हैं यह। गोत-माघ के दिन आ रहे हैं। सब पूजा-पर्वों को कंपनी खा गयी। पूस के अंत में हम वेझा-तुन करते हैं, तीर से निशाना वेधते हैं। वेझा-तुन अभी से शुरू हो गया।

नाच-गाना बंद। तमाखू, ढोल, करतार, बानाम, बूयाँ—सब बंद। नगाड़े बजेंगे, गिरह जायेंगी। आपूँग अच्छे समय पर मर गया।

"वह सब-कुछ जानते थे। कह भी गये हैं।"

"जानती हूँ। पर आँखों से देखा तो नहीं।" रूपा ने ठंडी साँस भरी, "जाती हूँ काम पर। आज मन करता है, तुम्हारे पास ही रहूँ।"

सास के साथ धान कूटते-कूटते वह सिसकने लगी। सास ने गम्भीर स्वर में कहा, "धान कूटने के समय रोने वाले के कष्ट कभी कम नहीं

होते।"

"मुझे डर लग रहा है।"

"मुझे नहीं लगता क्या ? पति नहीं, बेटा जा रहा है।"

"आयु ! क्या कहती हो ?"

"सीने के भीतर की बात पता है।"

"उसे रोको।"

"उसके ऊपर सारे समाज का भार है। कैसे रोकूं ? उसके तीर पर सान दूँगी। लड़ाई में भेजूँगी। पूजा दूँगी। घर-खेत में खटूँगी और रोयेंगी मैं और तुम।"

"हाँ, आयु !"

"ले। तू धान कूट। मैं खाना पकाती हूँ। अरे, मेरा ध्यान भी कहाँ चला गया है ! पानी लाऊँ। सोमा रे ! लकड़ी ला।"

धान कटने के बाद तीन महीने भी नहीं हुए थे कि मुनादी हुई—'कंपनी का तहसीलदार आ रहा है, बरकंदाज़ लेकर। पहले का बाक़ी कर पूरा लेगा और अब का भी।'

"बाक़ी क्या ?"

"अरे, इससे पहले फ़सल नहीं काटी कभी ? उसका खज़ाना चुकाना बाक़ी नहीं है क्या ? वे बाक़ी हैं, उधार हैं। और इस बार का अभी देना है।"

"अभी का कौन-सा कर ?"

"जो फ़सल काटी है उसका कर।"

"आमन धान का, एक बीघे पर छह आना। रबी-मौसमी पर तीन आना।"

"जिन्होंने एक ही ज़मीन पर दोनों फ़सलें लगायी हों तो ?"

"नौ आने। हिसाब सीधा है।"

"ज़मीन तो एक ही है।"

"फ़सल तो दो हैं।"

"जो नहीं देंगे, उनका क्या होगा ?"

"कंपनी उसे मामा के घर भेज देगी।"

पहले मुनादी। फिर पाइक-प्यादे लेकर तहसीलदार आया।

नर पे पगड़ी फर-फर,
पैर में जूता मच-मच,
कान पै कलम जमी है,
आँखें घूमें वन-वन,
धान-चावल देख ले,
गाय-भैंस देख ले,
और ख़ज़ानों में रख ले।

खज़ाने व कर के जुल्म पर सब से पहले बलि चढ़ा पीपल-गाँव। जंगल के इस इलाक़े और गाँवों में तहसीलदार घुस नहीं पाया था। पर बाद में वह सिपाही साथ लायेगा, संथाल समझ नहीं पाये थे। लेकिन सिपाही आये, साथ में तहसीलदार भी था। संथालों के दस घरों को घेर लिया उन्होंने। कुत्तों को गोली मार कर उन्होंने अपनी क्षमता का परिचय दिया। धान की कोठारी और घरों में आग लगा दी। आग देखकर डरे हुए नर-नारी बाहर निकल आये। सारे मर्दों को पकड़ लिया गया। ले गये भागलपुर। तहसीलदार बकता जा रहा, "कहा रहा था न, मामा का घर दिखाऊँगा। चलो, देखो अब। कैसा देस रे है! कंपनी के राज में रहोगे और खज़ाना नहीं दोगे!" फिर अमड़ा गोड़ा, फिर बहनू। तीरों की लड़ाई चलती रही, घर जलते रहे। भागलपुर कहाँ है? कितनी दूर है? पहाड़ियों के चिलीमिली साहब संथालों के दुश्मन क्यों हैं?

भागलपुर में चमड़े के हंटरों की चोट से बदन पर घाव हो गये। गोदाम में बंद लोगों को अन्न-जल तक नसीब न हुआ। वहाँ खून-टपकती देहों से, हाथ-पैर बँधे इंसानों का समवेत मंत्रोच्चार चलता रहा—

देंगे नहीं, देंगे नहीं, खज़ाना देंगे नहीं,
दिया नहीं, देंगे नहीं, खज़ाना देंगे नहीं।

गोदाम का मंत्रोच्चार हठात बंद हो गया। उस दिन कैदख़ाने में आया था तिलका का साथी तिभुवन। तिभुवन ने उन्हें कुछ समझाया। कैदख़ाने का पहरेदार उसे धक्का मार कर अंदर फेंक गया था। बोला, "जा, उन्हें समझा दे।"

तिभुवन बोला, "हाय रे ! तुम्हारे लिए इतनी मार खायी। कैद भी हुआ। अब सुनो, मनसा पहाड़िया ने क्या जुगत भिड़ायी है ?"

"बाबा तिलका माझी के बारे में भी बता।"

"उसके कहने पर कुछ होगा क्या ?"

"बोल, तेरी बातें सुन कर अच्छा लगता है।"

"कल ऐसे समय में और भी अच्छा लगेगा। सुनो !"

और सभी सुनते रहे।

सवेरे सिपाही ने दरवाज़ा खोला। तिभुवन बोला, "बुला, जिस मामा को बुलाता है, बुला। 'मामा' नहीं समझता क्या ? तहसीलदार जानता है। उसी ने कहा था, मामा का घर दिखाऊँगा। जाकर कहो, भांजे शरीफ़ हो गये हैं।"

फिर कलेक्टर के सामने पेशी। सब ने कहा कि वे बहुत दुखी हैं। तिभुवन ने समझाया, "वे समझ गये हैं कि कंपनी को खज़ाना देना ही होगा। तहसीलदार बाबू, आप चलिये उन्हें लेकर। हाथों-हाथ खज़ाना मिल जायेगा।"

क्लीवलैंड ने कहा "अच्छी बात है।" संथालों को बाँध कर तीस सिपाहियों के पहरे में गाँव की तरफ़ चला। गाँव के पास आते ही अचानक संथाल ज़मीन पर लेट गये और एक साथ मिल कर चीख़ने लगे। तहसीलदार चौंका और फिर चीख़कर पीछे छिटक गया।

गोलियाँ आ रही हैं। आवाज़ नहीं, धुआँ नहीं।

गुलेल चला रहे हैं। लोहे की गोलियाँ। तहसीलदार भी चीख़ा। अब तीर आ रहे हैं। हाथ-बँधे कैदी संथाल धीरे-धीरे सरकने लगे और फिर उठ कर भाग गये। मनसा, महन और कुछ संथाल बाहर आये। चार सिपाहियों और तहसीलदार को तीरों ने बींध दिया। मनसा चीख़ रहा था, "भांजे का घर देख, तहसीलदार ! मामा का घर दिखाया था न, अब भांजे का घर भी देख ले।"

तिलका पीपल-गाँव में था। मनसा तक़रीबन नाचते-नाचते उसके पास आया। बोला, "ये सारे चंद थे। इन्हें ले आया हूँ। अब तो ज़रा हँस दे।"

तिलका हँस पड़ा।

वह हँसी देखकर मनसा जैसे भूल गया कि यह घड़ी कितने संकट की घड़ी है। पहाड़ की चोटी पर आग जलाने का समय है यह। गिरह भेजने की घड़ी है। भूल गया कि अब कहीं गाना-बजाना नहीं होता। चारों तरफ़ जले घरों की राख देखती हुए औरतें चुपचाप खड़ी रहती हैं। ऐसा लगा कि यह गाँव-देवता की पूजा का दिन है। गोत-माघ पर्व का दिन है। आनन्दित होकर सिर के ऊपर हाथ उठाते हुए उसने तालियाँ बजायीं और घूम कर दो चक्कर लगाये।

तिलका बोला, "पीपल-गाँव के सभी लोग चलें।"

"कहाँ?"

"पहला हमला यहीं होगा। माझी कहाँ है? ऐ माझी! सुनो, अब बचाव करना होगा, सभी को बचाना होगा। यहाँ रहने पर सब जायेंगे। चलो।"

"कहाँ?"

"इतने गाँव हैं, फिर भी कहते हो कहाँ चलें? तुम्हारे लिए, इस जगह के अलावा क्या और कहीं जगह नहीं है?"

नर-नारी, भैंस-बकरी लंबी क़तार बाँधे धीरे-धीरे, हरे घनघोर जंगल में उदास हवा की पतझड़ी छाया में घुलते गये। तिलका सबसे आगे चल रहा था। संथाल जाति के एक अंश को अपने साथ लेकर चल रहा था। लक्ष्य साफ़ है। उसके सिर के ऊपर आदि-राज-हंसिनी के पंखों का साँय-साँय शब्द होता रहता है। सिर्फ़ तिलका सुनता है उसे, कोई और नहीं।

फिर गिरह भेजी गयी। टूटे बादलों में से झाँकते टूटे चाँद की रोशनी में पत्थरों पर बैठे हैं सब माझी। संथाल युवक। सर्द हवा। तिलका पत्थर पर खड़ा है।

"माझी, देशमाझी, परगनायेत, औरतें, बच्चे, बूढ़े-बुढ़िया खेती-बाड़ी और गाय-भैंस संभालें। पहले यह दायित्व लो। फिर लड़ाई करेंगे।"

"हम क्या घरों में बैठे रहेंगे?"

"पहले व्यवस्था करो। फिर आना लड़ने के लिए भी। मैं भी माझी हूँ। गाँव की व्यवस्था हमें भी तो देखनी है। हर गाँव के आदमियों

को बचाने के लिए ही तो लड़ाई है। यह बात अगर तुम भूल गये तो सर्वनाश हो जायेगा।"

"और क्या करना है ?"

"और भी बहुत-कुछ करना है।"

"क्या ?"

"जंगली इलाक़े में जगह-जगह बिखरे हमारे गांव हैं। जंगल हमारा आश्रय है। हर जगह के लिए अलग-अलग दल बनेंगे। तीर और गुलेल दूर से मारने में अच्छे होते हैं। हम क़रीब से लड़ने नहीं जायेंगे। जंगल में छुप-छुप कर लड़ेंगे। हठात सामने, हठात ग़ायब। आज यहां, कल वहाँ।"

"कहते रहो।"

"बहुत-से काम करने होंगे। खेती-बाड़ी भी साथ-साथ करनी होगी। लड़ाई की बात भेजे में रखनी होगी। बस यही बात है।"

"गाँव में से जो लड़ाई लड़ेंगे, उन्हें पहचानेंगे कैसे ?"

"यह क्या बात कही तुमने, भाई ?"

"शाल की छाल लो, हाथों पर बांध लो। यही चिन्ह है। चिन्ह भी क्या करेगा ? सब क्या चिन्ह लगाकर घूमेंगे ?"

बात यहीं ख़त्म हुई। यह लड़ाई कैसी होगी, यह तिलका को ही बताना है। एक दिन तितापानी नाला पार करके, पगडंडी से होते हुए जंगल में घुसे। एक सौ सिपाही और कैप्टेन फ़िलिप। सबके हाथों में बन्दूक। घुसते समय सब हिंस्र आंखों से खोज रहे थे, संथाल गाँवों को। गाँव इस नाले से बहुत दूर हैं, यह उन्हें पता नहीं था।

क्लीवलैंड का निर्देश है—'जंगल के इलाके के भीतर कितने गाँव हैं, हम ठीक से नहीं जानते। कोई कभी उनमें नहीं गया है। थोड़े पहाड़ हैं, बाक़ी जंगल। यह प्रकृति का भयानक क़िला है। साहस करके घुसना। गाँव-के-गाँव को पीपलगाँव बना दो। जला दो। गोली मार दो। तभी यह समझेंगे कि हम शक्तिशाली हैं। डर से अधीनता मानेंगे। पुलिस जाये पीपल की तरफ़। वह जगह कमज़ोर और असुरक्षित है। सरकारी लोग मार दिये हैं इन्होंने। इन्हें अधीन करना ही होगा।'

फ़िलिप ने पूछा, "कैसे लगा दें ?"

"अगर ज़रूरी हो तो।"

जंगल में घुसने पर फ़िलिप ने देखा कि ऊँची-नीची ज़मीन और टूटे पत्तों के बीच से तितापानी नाला बह रहा है, पहाड़ों के बीच में से। गाँव दीख नहीं पड़ते। आदमी नहीं, यहाँ तक कि गाय-बैल की घंटियाँ भी नहीं सुनायी पड़तीं। आग, खेत—कुछ भी नहीं दीखते।

ख़ेमा गाड़ दिया फ़िलिप ने। पत्थरों की ओट में आग जलाकर खाना-पक रहा था। कंपनी की फ़ौज बड़ी अच्छी हैं। इतनी छोटी फ़ौज के साथ भी भारवाहक, मशालची और बावर्ची हैं।

शांति, चारों तरफ़ असीम शांति। अँधेरा होते ही आकाश में तारे छिटक आये। तभी अचानक फ़िलिप को लगा कि जैसे कोई पेड़ के तने से लगकर आगे बढ़ रहा है। काला-काला चुपचाप यह क्या है ? यह क्या प्रेत-भूमि है ?

काली-काली चुप्पी हठात ख़त्म हो गयी। तीर, तीर, तीर के पीछे तीर। तीर के फलक से लगी आग। तंबू जलने लगा। इनके बंदूकें चलाने से पहले ही वे ग़ायब। फिर दूसरी तरफ़ से तीर। और फिर गर्जन।

"पीपल-गाँव को मसान बनाया इन्होंने। पीपल का नाम लेकर ही आगे बढ़ो हज़ारों आदमी !"

सिपाही भागने लगे। "हज़ार संथाल हैं साहेब, हमसे नहीं होगा।" फ़िलिप बंदूक चलाता रहा। उसके कंधे में तीर लगा। तीर निकाला तो खून झर-झर करके बहने लगा। हताहतों को छोड़ फ़िलिप भागा। तीर। मशाल जलाये संथाल पीछे-पीछे भागे। पत्थर में मशाल गाड़कर टाँगी से उन्होंने आहत सिपाहियों की गरदनें काट डालीं।

सब-कुछ ख़त्म होने पर मनसा ने पसीना पोंछा। जमीन पर थूकते हुए वह ज़ोर से बोला, "तिलका !"

"क्यों ?"

"हम आये पचास थे, लेकिन हज़ार संथालों की हुंकार किसने दी ?"

तिभुवन बोला, "वही पचास हज़ार हो गये थे।"

पीपल में पुलिस-वाहिनी पिटी घुसते ही। जदू परगनायित और उसके संथालों के हाथों पिटे वे सब।

अब गांव-गांव में सब एक-दूसरे के हाथों में शाल-छाल बांध रहे हैं। तिलका माझी का नाम चारों तरफ़ फैल गया। लड़ाई चलती रही। एक के बाद एक। छह महीने बाद वर्षा का जल पाकर तितापानी फूल जाता था और जंगल और दुर्गम हो जाते थे। पहाड़ी झरने नीचे उतरते थे और इलाक़े को धो डालते थे। नाले, नदियां, झरने इस जंगली इलाके के चौकीदार बन जाते थे। क्लीवलैंड ने जंगल के विरुद्ध अभियान मुल्तवी कर दिया। कंपनी के क़ानून बड़े अच्छे हैं। प्रसाद का वितरण हुआ।

इस पक्ष के जितने मरे हैं, उस पक्ष में युद्ध का उतना ही उल्लास है। वर्षा होने के साथ-साथ तिलका इत्यादि चले आये धान की रोपाई करने। और सोमी माँ और रूपा ने उससे कहा, "तुम्हारे जैसे लड़वैया को यहाँ कुछ नहीं करना है। तुम लड़ाई के बारे में सोचो। धान रोपना कोई काम है भला? वह हम कर लेंगे।"

"जो मर्दों के काम हैं, जैसे कुदाल चलाना, उन्हें कौन करेगा?"

सोमी बोली, "उन्हें पहाड़िया करेंगे। मनसा कह गया था कि हम धान काट देंगे।"

"पर्व-पूजा वगैरह?"

"कुछ कर लिये हैं और कुछ करने बाक़ी हैं। मँड़ेका की मनौती भी है। बुरा न मानना, देवता! मेरा तिलका जब संथालों के अच्छे दिन लौटा लायेगा तब धूमधाम से पूजा करूँगी।"

वर्षा चलती रही। मनसा, मधु और महन घूम-घूम कर लोहारों से, बढ़इयों से गुलेलें और गोलियाँ बनवाते रहे। आंदोलित प्रांत, खेत और जंगल। वर्षा से सभी जगह लाल पानी बह रहा था। पानी में वे सिर ढँक कर घूमते रहते थे। कुछ और पहाड़िया युवक अभी आयेंगे, ऐसा लग रहा है। तिलका तिभुवन, सना और हारा को लेकर घूमता रहा। हाँ, "मन मज़बूत रखो तुम। तीर के फ़लकों की धार तेज़ करो। गुलेल चलाने के लिए हाथ स्थिर रखो।"

वर्षा ऋतु ख़त्म होने को आयी। अब धानुक भी वापस आ गये थे।

"हम क्या यहाँ के नहीं हैं ? हम भी व्याध हैं। तीर-धनुष हमारे पास भी हैं। फ़ौज-पुलिस जब आयेगी तो क्या हमें छोड़ देगी ? हम भी लड़ेंगे।"

उस बार जब तिलका लौटा तो रूपा से बोला, "पहाड़ियो ने कंपनी के साथ दोस्ती करके जो पाप किया था वह उन्होंने तीन जानें देकर काट दिया है। चाँडि धानुक भी आ गये हैं।"

"बढ़इयों की बात भूल गये ?" रतनमनि चिल्लाया।

"नहीं, कुम्हार काका ?"

'यह ले, बड़ा सरदार हो गया है तू। लड़ाई लड़ना तेरा काम है। तो ले, हमारे पास तो यही है।"

"तीर का फ़लक और नेजा ?"

"नेजा, हाँ छोटा नेजा। तुम्हारे लिए बनाया है! तुम्हें दे रहा हूँ।"

"तुम भी लड़ोगे ?"

"हाँ, बेटे! अगर कंपनी बिना बात के खजाना वसूल करने के लिए फ़ौज भेज सकती है तो हम क्या लड़ भी नहीं सकते ? तू तो घूमता रहता है।"

वर्षा ख़त्म होने पर केयाफूल की गंध हवा में फैल गयी थी। वर्षा के बाद पर्व आयेगा। दिग्विजय का पर्व। बार-बार मार खाकर क्लीवलैंड ने रणनीति बदल डाली। एक साथ छह फ़ौजी टुकड़ियाँ हमला करेंगी संथाल बस्तियों पर। मोरेल, हैदर, गैब्रील, ऑस्कॉट, मिट्फ़ोर्ड और ह्वीलर चले आगे-आगे। मिटफ़ोर्ड के पास पचास पहाड़िया भी थे। वे ही जंगली रास्तों को जानते थे। वे सब पहचानते हैं, तिलका को। मिटफ़ोर्ड और सिपाही जंगल के भीतर घुसते चले गये। नाले की धार के साथ-साथ कुछ दूर चल कर वे नाले के पार आये। तभी झुरमुटों के पीछे से अचानक गोलियाँ और तीर बरसने लगे। सिपाहियों के हाथों में भी तलवारें। नये हथियार। मिटफ़ोर्ड के पास था घोड़ा और बंदूक। मिटफ़ोर्ड ने बंदूक चलायी। चीख़। कोई गिरा है। फिर बंदूक उठायी। तभी हाथों में तीर घुस गया। मिटफ़ोर्ड ने एक की तलवार छीन ली।

"अरे, कंपनी बायें हाथ से तलवार घुमा रही है रे!" तिलका हँसा

और उसने गुलेल चला दी। मिटफ़ोर्ड के दोनों हाथ बेकार। टांगी और तीर-कमान लेकर तिलका की फ़ौज झोपड़ियों और झुरमुटों के पीछे से बाहर आ गयी।

मनसा चिल्लाया, "अरे पहाड़िया धानू, जगजाल, सदान! सुंद्रा माझी का चावल खाकर जिन्दा बचे थे! सालो, आज उसी के बेटे पर हथियार उठाते हो?"

"कंपनी का नमक खाया है, मनसा!"

"उस चावल-भात की आज उलटी करवा दूंगा। अरे हरामियो, जात-धर्म छोड़कर कंपनी के कुत्ते हो गये हो तुम सब! तीर-धनुप भी नहीं, तलवार लेके आये हो। नीचे तुम हो तलवारों के साथ, ऊपर हम हैं तीर-धनुप लेकर। अपने कंपनी बाप से कहो कि अब तुझे बचाये।"

"मनसा, तू पहाड़ियो को मारेगा?"

"पहाड़िया? तुम अब सब पहाड़िया नहीं रहे हो।"

"क्यों?"

"गाँव चल तब पता चलेगा। अब पहाड़िया और संथाल सब एक हैं, जैसे पहले थे।"

"यह कैसी बात है? हमें तो पता नहीं चला।"

मनसा के तीर से धानु घूम कर गिर गया। मनसा चिल्लाया, "मैं सरदार का बेटा हूँ। बेईमान को मैंने दंड दिया है! तुम्हारे खून से नाले की धार लाल कर दूंगा रे! संथाल के गाँव को जलायेगा, उनकी औरतों-बच्चों को काटेगा। इनके बाप ने इन्हें यही हुक्म दिया था!"

पहाड़िया चिल्लाये, "हमें मत मारो। हम तलवारें फेंक रहे हैं।"

"फेंक! अभी तक क्यों नहीं फेंकी?"

सदान और धानु चिल्लाये, "यह झूठ बोलता है। तलवारें मत फेंकना, वरना कंपनी मार देगी।"

सदान, धानु और कई लोग गिर पड़े। दूसरे पहाड़िया भागे। उन्हें भी तीर लगे और वे भी गिर गये। मिटफ़ोर्ड भागा। तभी पूरब से चीख़ उठी, एक आर्त चीख़। तिलका भागा उस तरफ़। जाठा गाँव के रास्तों पर ह्वीलर और उसकी फ़ौज के साथ पवन किसकू और उसके लोगों की लड़ाई

चल रही थी।

ह्वीलर के हाथ में बंदूक थी और बाक़ी फ़ौज के हाथ में तलवारें थीं। दोनों तरफ़ के लोग ज़ख्मी हो रहे थे, लाशें गिर रही थीं। तिलका और मनसा के वहाँ आ जाने पर संथालों में दूना उत्साह आ गया।

तिलका चिल्लाया, "छिप जाओ रे ! छिप-छिप कर लड़ो।"

आज की छह मोर्चों वाली लड़ाई में कंपनी को काफ़ी क्षति पहुँची। तिलका ने आदेश दिया, "सारा गाँव छोड़कर सब लोग जंगल के भीतर चले जाओ।"

ठीक नौ दिन के बाद फिर आयी कंपनी की फ़ौज। इस बार हरेक सिपाही बंदूकधारी। जाठा और कोटेरा गाँव उस दिन के युद्ध में तहस-नहस हो गये। गाँव-के-गाँव जला दिये गये। लेकिन तभी एक अलौकिक घटना हुई। मिट्टी से तीर छूटने शुरू हुए। दोनों तरफ़ के जंगलों से भी। तीर की दिशा में गोलियाँ चलायी गयीं तो पता चला कि मिट्टी में खूंटा गाड़ कर धनुष फ़िट किया गया है। डोर से और डोर बँधी हैं। चाँड़ि धानुकों द्वारा 'पातन कोंड़' या इस पद्धति से तीर चलाने की कला को कंपनी की फ़ौज नहीं जानती थी। बदमाश क़रीब ही हैं, यह सोचकर उन लोगों ने गोलियाँ चलानी शुरू कीं। और आगे बढ़ते गये। आगे, और आगे। फिर रास्ता बंद। पीछे बहुत से पेड़ आन गिरे। फँस गये सब। भगदड़ मची। फिर तीर आने शुरू हुए। साँय-साँय। गोली बनाम तीर। गोली और फिर तीर। फिर भाग-दौड़ शुरू हो हुई। भागते रहे, आवाज़ें आती रहीं—मच-मच। फिर गोली, फिर तीर। सारी गोलियाँ ख़त्म। भागो। पीछे से आता समवेत तीव्र चीत्कार। फ़ौजी घोड़ा भागा। आहतों और घायलों तक को नहीं उठाया।

तिलका मनसा को गोद में उठाये दौड़ता रहा। पसलियों से रक्त उछलता रहा, बहता रहा। मनसा का शरीर लहूलुहान। वह शिथिल और भारी होता जा रहा था। यहाँ घास है, यहाँ सब शांत है। मनसा को तिलका ने घास पर लिटा दिया।

"मनसा ! मनसा ! मनसा !"

मनसा ने बड़े कष्ट से धीरे-धीरे आँखें खोलीं।

"तिलका !"

"बोल !"

"मुझे गाँव मत ले जाना।"

"तू ठीक हो जायेगा।"

"जहाँ सबको गाड़ा है वहीं मुझे भी...करेगा न ?

"हाँ मनसा ! वही मिट्टी दूँगा...उसी जगह।"

"किसी तरह, जहाँ मृत्यु हो वहीं...पहाड़िया बेईमान नहीं।"

"नहीं हैं, मैं जानता हूँ।"

"धान पकते-न पकते...।"

"क्या ?"

"वे फिर आयेंगे।"

"जानता हूँ। फिर लड़ेंगे।"

मनसा ने सिर हिलाया। एक ज़रूरी बात बता कर जा रहा वह। तिलका कहता है, फिर से लड़ेगा वह। वह इस ज़रूरी बात का मतलब समझ गया है। दूसरे शहीदों की तरह उसकी समाधि बनेगी, यह निश्चित है। मनसा पहाड़िया दूसरे विश्वासघाती पहाड़ियो के पाप का प्रायश्चित कर गया, तिलका जानता है यह। अब क्या करें ? चलें ! मनसा का सिर एक तरफ़ ढुलक गया।

मशाल जलाकर तिलका, मधु, महन, तिभुवन, हारा मील-दर-मील चलते गये। पहुँचे मनसा के गाँव। जाकर मनसा के बाप के सामने खड़े हो गये। मनसा का बाप मनसा का धनुष लेकर बैठा रहा। वे चले आये।

दूसरे दिन एक बड़ा जुलूस निकला। शांत पत्थरों-से चेहरे वाले पहाड़िया युवकों का जत्था। तिलका के सामने आ खड़े हुए सब।

"हमारे हाथों पर शाल-छाल बाँध दो। मनसा पहाड़िया नहीं रहा, लेकिन हम तो हैं।"

तिलका तीन रात से जगी लाल आँखों से देखता रहा।

"हम कंपनी की फ़ौज में नहीं गये थे। हमने बहुत दिनों तुम्हें तुम्हारे गाँव में ढूँढ़ा, लेकिन तुम ही नहीं मिले। अब हम तुम्हारी बात मानेंगे। जो भी कहोगे, करेंगे।"

तिलका समझता है। सनगा सरकार सारे पहाड़िए दे गया है। उसने सभी को राखी बांधी।

पहाड़िया बाह्य जगत को अच्छी तरह जानते हैं। संथालों से ज्यादा। टहल पहाड़िया बोला, "अगर कहो तो किनारे के बीस-पचीस गांवों के रहने वालों को भी अंदर ले आयें। उन पर सबसे पहले हमला होगा। चिलीमिली साहब कुछ नहीं भूलता।"

क्लीवलैंड कुछ नहीं भूला। कुछ नहीं भूला है वह। उसका काम भूलने पर नहीं चल सकता। भारत में अंगरेज़ी शोषण का एक नगण्य मुहरा मात्र है क्लीवलैंड। 1784 में भारतीय क़ानून विलायत में बना। उसमें घोषणा की गयी कि भारत में साम्राज्य-विस्तार ब्रिटेन का उद्देश्य नहीं है। व्यापार करते हुए साम्राज्य-विस्तार अंगरेज़ी नीति के ख़िलाफ़ था। जाति-मर्यादा नष्ट होती है। लेकिन इधर साम्राज्य-विस्तार चल रहा था। नवाब के महल से लेकर संथालों की जंगलों की बस्तियों तक अंगरेज़ दख़ल करेंगे। विद्रोह होते रहेंगे। क्लीवलैंड को ख़बर मिली कि पहाड़िया संथालों के साथ हो गये हैं। वह गुस्से से भरा बैठा था। उसने सेक्रेटरी रावर्ट्स और पुलिस-कमिश्नर गुडविल से कहा कि "पहाड़िया सिपाहियों को बुलाओ। उनसे गांव-के-गांव जलवा डालो। जंगल के लोगों से जंगल के लोगों को मारो। यह एकता तोड़नी होगी।"

"एकता है कहां?"

"यहां नहीं, पहाड़ पर है।"

"गांव के सरदारों से बात करो। उन्हें समझा दो। वे सभी को समझायेंगे। लोगों को उधर जाने से रोकेंगे।"

क्लीवलैंड ने खूब सिखा-पढ़ाकर तीस फ़ौजियों के हाथ पाठी, चावल और नये कपड़े भेजे। कहा कि "उनसे कहना, चिलीमिली साहब ने कहा है, संथाल बदमाश हैं—जंगली हैं। उनके साथ मिलकर तुम बहुत बड़ी भूल कर रहे हो। तिलका माझी को हम पकड़ेंगे, दंड देंगे। कहना, कंपनी सरकार देश की कर्ता-धर्ता है। कंपनी के साथ लड़ने पर सब-कुछ बरबाद हो जायेगा।"

"ज़रूर कहेंगे।"

वह तीस लोग गये तो फिर नहीं लौटे। एक पेड़ की डाल से कपड़े, कमरबंद और पगड़ी लटका कर सीधे चले गये तिलका के पास। उन्हें दंड देने के लिए जब फ़ौज आयी तो उन्होंने ही तीर मार-मार कर उन्हें घायल कर दिया। चिल्लाकर बोले, "कंपनी फ़ौज ! बाबा तिलका माझी का हुकुम सुन। जंगल के इलाके में लोग कर-खज़ाना नहीं देंगे, ज़मीन नहीं देंगे, झगड़ा नहीं करेंगे। लेकिन पैर से पैर बाँधकर लड़ने पर ऐसे ही तीर खाओगे। ऐसे ही गुलेल खाओगे। निशाना ग़लत नहीं होगा रे, देख ले !'

"हार, हार !" क्लीवलैंड गुस्से से भभका, 'इस बार मैं जाऊँगा। मेरे साथ रहेंगी कमान, रहेंगी बंदूकें।"

बाँका किसकू वायु वेग से भागा आया। ग़ज़ब की ख़बर लाया है वह। मति लोहार चिलीमिली साहब का चपरासी है। उसने भागलपुर के फ़ौजी बाज़ार में कहा है, 'साहेब तो खुद जा रहा है तिलका माझी को मारने। अब क्या होगा ?'

सर्जनसिंह घटवार ने खुद अपने कानों से सुना है।

तिलका बोला, "तब तो उससे मुलाक़ात करनी ही होगी। ऐसा आदमी हम छोटे संथालों के पीछे भागलपुर की कोठी छोड़कर आ रहा है तो मुलाक़ात ज़रूर होगी।"

हारा बोला, "ओह ! वहाँ गरमी में ऊपर पंखा चलता है। सरदियों में आग जलती है।"

टहल पहाड़िया, फूस की जलती हुई आग के क़रीब सरक आया। बोला, "पता है, साहेब कितना खाता है, कितनी बार खाता है रे ! दस बार।"

मधु पहाड़िया बोला, "हाँ ! उनके यीशू पर्व-पूजा में बड़े-बड़े मोर परोसे जाते हैं।"

"मोर खाते है ?"

"इतना बड़ा पंछी। ज़रा सोच। आँखें बंद कर सोच। पूरे मोर को काटकर, घी में डालकर, मसाले में भूनते हैं। फिर टेबिल पर परोसते हैं। साहेब बाघ की तरह फाड़कर खाता है, उसके मित्र भी।"

तिलका इत्यादि बातें कर रहे थे आरिया-गाँव के देशमाझी के मचान

पर बैठकर।

तिलका बोला, "क्या समझे रे, सजो हाँसदा ? सुनी तुमने इनकी बातें ?"

"क्या समझूँ ?"

"देश-माझी तुम हो, समझते भी नहीं ?"

"तुम कह रहे हो, तो समझ गया।"

"धत् बेटा ? तू समझा कि नहीं ?"

"समझा।"

"क्या समझा रे ?"

"कि जो साहेब ऐसा खाता-पीता है, ऐसे ठाठ-बाट से रहता है, उसकी कुछ इज़्ज़त तो होगी ही। मेरी बात सुन। मन कर रहा है कि साहेब तो सफेद है। उसे पकड़ कर मारांगबुरू के पास जाहेर-थान पर बलि क्यों न दे दें ? अच्छी पूजा हो जायेगी।"

"देवता भी न लें उसे।"

"तब तो उससे दूर से ही मुलाक़ात करनी होगी। इतना बड़ा आदमी है। वह तेरे लिए बड़ा गोला-बारूद भेज रहा है। तू क्या भेजेगा ?"

"हाँ, यह एक बात तो रह ही गयी। क्या यह बात ठीक है ? या तूने अपने-आप घड़ी है ?"

"भेंट आ रही है। तेरा सर्जनसिंह घटवार। वह हमारे हाथ का आदमी है। डरता भी है, प्यार भी करता है। संकट में हमने उसका परिवार बचाया था। आदमी मरे थे सूखकर। सर्जनसिंह कंद-मूल, मांस, उड़द, चीना धान खाकर मोटा हो गया था। वह तेरे लिए भेंट लाने के लिए दूर कामारबाड़ी गया है।"

"वह है कौन, सजो ?"

"वह ? पलान रविदास। हमारी तलाश में कंपनी की फ़ौज उनके गाँव में घुसी थी। गाँव, आदमी, फ़सलें—सभी जला दिये थे। पलान ने आग में अपनी दोनों आँखें डाल दीं। अब यहीं रहता है।"

"रोता है ?"

"नहीं। गाता है।"

"सर्जन तो आया नहीं। पलान रे, ज़रा आग के क़रीब आना। हमें एक गीत सुना दे।"

पलान अलौकिक दक्षता से सीधा तिलका के पास आया। बोला, "तिलका माझी ! बाबा तिलका माझी ! जब आँखें थीं तो एक बार देखा था तुझे हाट में। आँखें नहीं हैं तो सैकड़ों बार देखता हूँ। तिलका माझी, बाबा तिलका माझी !"

देवता की तरह प्रशंसा सुनने से बड़ी विरक्ति है तिलका को। उसने कहा, "गीत गाओ, भाई !"

पलान रविदास बड़ा मतिवान व्यक्ति है। बोला, "दो गीत गाऊँगा।"

"ठीक है, गाओ !"

लकड़ी की ठिकठिक बजाते हुए पलान गाने लगा--

घर जले, राख उड़ी,
टुकड़ों से सज गया जंगल।
रुक्कन कहाँ, मुक्कन कहाँ,
सुखन, लछमन, सावन कहाँ ?
मैं ही रुक्कन, मैं गोहालि में,
मैं ही मुक्कन, मैं हूँ घरों में।
सुखन, लछमन, सावन सो गये,
बाजरे के खेत में, नदी की धार में।

पलान रुका। उसने अपना मुँह पोंछा। फिर सभी को चौंककर गम्भीर दुख का बोध कराते हुए उठ खड़ा हुआ—

नूसा साबोन, नया साबोन चेले हँ बाको तेंगोंन,
खाँटी गेबोन हुल गेया हो,
खाँटी गेबोन हुल गेया हो,
दिशम दिशन देश-माझीहि परगना,
नातो नातो मापाँजिको,
द: बोन दा नाँग बोन बाँग गोको तेंगोंन,
तबे गेबोन हुल गेया हो।

तिलका धीमे आवेशयुक्त स्वर में बोला, "हाँ, हाँ, यही हमारी कहानी है।"

—हम सब जो लड़ाई करते हैं, उसकी कहानी है। हम बचेंगे। हम जीतेंगे।

—कोई हमें झेल नहीं पायेगा, हम विद्रोह करेंगे। देश, माझी और परगना, गाँवों के मोडल—सब हमारी सहायता करेंगे।

—कोई हमें झेल नहीं सकेगा।

—हम विद्रोह करेंगे, जरूर विद्रोह करेंगे।

"पलान, पलान, यह गीत तुमने कहाँ सीखा ? तुमने यह गीत कहाँ से सीखा ?"

तिलका के भावावेग पर सजो ने पानी डाल दिया। बोला, "देख लो, सब लोग। तिलका इतना बड़ा आदमी है। हमारा यह बाबा तिलका माझी सबको शाल-गिरह भेजता है। लड़ाई शुरू करता है। विद्रोह खड़ा करता हैं। वह अभी भी बच्चा ही है, दूध पीते बच्चों-सी बातें करता है। तिलका! विद्रोह किया है। बहुत लाशें गिरी हैं कम्पनी की, हमारी भी। सब कर सकते हो, फिर यह गीत क्या हैं ? यह गीत सभी गाते हैं। कितने ही और गीत भी हैं। विद्रोह होगा तो विद्रोह के गीत नहीं होंगे क्या ? यह क्या कहा तुमने ?"

"ठीक कहते हो तुम ! हुल—विद्रोह ! आह ! हुल ! आज नाचने की तबीयत हो रही है, रे सजो !"

"क्यों, क्या हुआ ?"

"सभी को बुलाओ ? नहीं, मैं पागल नहीं हुआ हूँ। विद्रोह करता हूँ। लड़ाई करता हूँ। सब मिलकर धड़धड़ाते हुए आगे बढ़ते हैं। दुश्मनों की रीढ़ें काँप जाती हैं। 'हुल' कहकर बढ़ना होगा। आओ, सब साथ-साथ चिल्लाये।"

सजो ने आवाज़ दी, "बेटा लोगो, घर जाओ ! गोहाल में जैसे गाय-गोरू बंधे होते हैं, वैसे ही बंधकर जाओ। यह बाबा तिलका माझी है। हमारा देवता है अब।"

हँसते-हँसते तिलका और बाक़ी सब लोग उठ खड़े हुए। हाथों की

कुप्पी मुँह पर बना ज़ोर लगाकर चिल्लाये—"हु—ल ! हुल ! हुल !"

यह ध्वनि गाँव से जंगल और जंगल में दूर, बहुत दूर तक फैल गयी !

तभी सर्जनसिंह आ गया। बोला, "पानी दे रे, देशमाझी ! आ रहा था, तभी एक तेज़ ध्वनि सुनी थी। बाप रे ! जैसे पहाड़-जंगल एक साथ मिलकर सौ मुँह से चिल्ला रहे हों। हँसते क्यों हो ? तुम्हीं चीखे थे क्या ?"

उसका झोला देखकर वे सब फिर चिल्लाये, "हुल !"

सर्जन कामारबाड़ी से तीर के फलक और लोहे की गोलियाँ ले आया है।

"तिलका माझी चिलीमिली साहेब से भेंट करने जायेगा। नामी-गिरामी लोग हैं वे। उनके लिए, यही भेंट है।"

सर्जनसिंह बोला, "तिलका ! एक बात याद रखना। तुम सीधी-साफ़ लड़ाई जानते हो। साहेब बात करते-करते गोली मार देते हैं। मेरे साथ हँस-हँसकर बात करेंगे, लेकिन पीछे से छुरा घोंप देंगे। मुँह से हँसते हैं या कोड़े मारते हैं, यह पता नहीं चलता।"

"नामी-गिरामी हैं वे। लुहारों को और दे आया है क्या ?"

"यह भी कहने की बात है ?"

"अभी हम व्यस्त हैं। जब सब शांत हो जायेगा तो धान-दाल-सरसों से मजूरी और लोहे का दाम दे देंगे। कह दिया है न तुमने ?"

"कह दिया है, बाप !"

"तू हिसाब रखना।"

"रखूँगा। पर देने की ऐसी बात क्या है ? अकाल में सब तेरी दया से नहीं बचे क्या ?"

"तू घटवार है, पर आदमी अच्छा है। तेरे समाज का हिसाब हम नहीं मानते। अकाल में कंदमूल, शिकार और घर में रखी दाल से संथालों ने किसी की जान बचा दी है, तो इसमें इतनी क्या बड़ी बात हो गयी ? यही तो धर्म है। इसीलिए अब लोहे और गोलियों का दाम न दें तो भी ठीक नहीं।"

सर्जनसिंह सिर झुकाकर बोला, "जो तू कहे ठीक है। वैसे मैं भी कम नहीं हूँ। गाँव-गाँव घूमता हुआ सबको यम का डर दिखाता हूँ। कहता हूँ, याद रखो कि संथाल-समाज तुम्हारे लिए क्या कर रहा है। आज कंपनी और संथालों के बीच लड़ाई चल रही है। कंपनी से डर कर संथालों से दुश्मनी मोल मत लेना!"

"अच्छा, ऐसी बात है?"

"हाँ।"

"तू कंपनी का नौकर है न?"

"हाँ, हूँ।"

"कंपनी का ईमान नहीं रखेगा?"

"सौ बार रखता हूँ।"

"वहाँ भी ईमानदारी और तिलका के प्रति भी ईमानदारी—यह कैसे?"

"हाँ, कैसे नहीं? तिलका रामजी का अवतार है। चिलीमिली साहेब रावण है। इसीलिए तिलका ने हथियार उठाया है।

"अच्छी बात है, तिलका! हम राजपूतों ने तुम्हारी लड़ाई के लिए पूजा की।

"बड़े हिरण खाये हैं रे! साहेब भागलपुर छोड़ चुका है, घोड़े पर। सो, हिसाब लगा ले। एक दिन चल चुका होगा।"

"आने दे।"

सर्जन चला गया। तीतर का मांस, उड़द की दाल और चीना धान का भात सबने भर-पेट खाया।

तभी मधु पहाड़िया और हारा संथाल की तीखी चीख़ धीरे-धीरे क़रीब आती गयी। तिलका उठ खड़ा हुआ। रूखे, उलझे, घुंघराले बाल। जाली कपड़े की पट्टी से सर बंधा हुआ। कमर में धोती, कंधे से झूलती जाली में गोलियाँ और गुलेल, पीठ पर झूलता तरकस। हाथ में धनुष और तीर। सामान्य क़द। बड़े कन्धे। चौड़ी छाती, बलिष्ठ बाजू। युद्ध की निशानी ललाट पर, बाजू पर, पीठ पर—सभी जगह मौजूद हैं। सारी निशानियाँ मिटेंगी नहीं। जीवन-भर रहेंगी।

तेज़ चाल से चल रहे हैं वे पंक्ति वनाकर। चलते-चलते सजो वोला, "आज की लड़ाई में क्या होगा ?"

"आज भी हमारी जीत है।"

"कैसे जाना ?"

"कल नाले की धार में सफ़ेद हंसिनी वैठी देखी थी। सपना याद आ गया। सरदियों में वे आते हैं। लेकिन तभी याद आया, आदि-आयु डैने समेट मेरी छाती पर वैठी थी। वड़ा साहस आ जाता है। लड़ाई का जोश वढ़ जाता है। इसी से लगता है कि हमारी जीत होगी।"

"तू तो देवता जैसा है।"

"आज की जीत हमारी है। अगर हार कर भागे तो पीछे से धावा करेगा चिलीमिली साहेव।"

"हाँ, जंगल में घुस आयेगा।"

"जंगल में ? अरे, जीवन में घुस जायेगा। पक्के चवूतरे में जैसे पीपल के वीज घुस जाते हैं। फिर कभी नहीं निकलते। सव खा जायेगा। चलो, ज़रा तेज़ क़दम से चलो।"

होई ! होई ! अरे वे आज हज़ार धनुप लाये हैं।

"दे, आवाज़ दे ज़रा।"

"हुल ! हुल ! हुल !"

वे सव चलते रहे। खाँटी गेवोन हुल रहा है। तिलका को महसूस हो रहा है। उसके रक्त की धार मचल रही है आज। जंगल पार करते ही तितापानी के उस पार मैदान में उन्होंने साहव को देखा। नाहर सिंहों का इलाक़ा है यह। साहव के पास वड़ी फ़ौज है। दूसरे हथियार भी हैं।

तिलका वोला, "पत्थर की ओट में छुप जाओ और वहीं से तीर चलाओ। वे गोली चलायेंगे। तुम लुढ़क कर नदी किनारे चले जाओ। हारा ! तुम जंगल के किनारे-किनारे रहो। कितनी वंदूकें हैं रे ? मारेंगे, मारें। जीत हमारी है। नहीं तो इलाक़ा गया, आवादी गयी, समाज गया। चलो, करो शुरू !"

सव एक साथ चिल्लाये—

"हुल—हु—ल ! हु—ल !"

पत्थर से टकराकर 'हुल' ध्वनि भयानक गर्जन कर उठी। अभी अँधेरा था। बंदूकें गोलियाँ उगलने लगीं।

"अँधेरा हमें बचाएगा। निर्भय होकर लड़ो। रोशनी नाश करेगी हमारा। हारा, मधु, तिभुवन, केशर धानुकी—सब अपने लोगों को लेकर बिखर जाओ। अलग-अलग लड़ो।"

चारों तरफ़ से तीर चल रहे हैं। जब तक अँधेरा है, वे सुरक्षित हैं।

तिलका के पास से एक पत्थर उड़ा। गोली!

"तिलका, सिर झुका। नीचे होके चल।"

"तू सिर झुका, सजो!"

"देख, घोड़े की पसलियों में तीर लगा है।"

"देखा।"

"और देख, पूरब का आकाश...!" तिलका को चौंकाते हुए सजो गिर गया। हारा की चीख, "तिलका! सिपाहिये ऊपर चढ़ आये हैं, सजो को मार दिया है।" तिलका के क़रीब एक चेहरा है। आकाश मटमैला हो गया है। उनके हाथों में संगीने हैं। कई चेहरे। सजो की टाँगी उठाली तिलका ने। वह पागल हो उठा, "सजो को मारा साले! सजो देशमाझी को! आरूआ गाँव को अंधा बना दिया! चला टाँगी!"

हारा और तिभुवन भी आ गये।

तिलका चिल्लाया, "अब छिपना नहीं है रे! तितापानी की धार में आसाढ़ की धार की तरह उतरेंगे।"

आसाढ़ की धार की तरह उतरे वे। क्लीवलैंड कहाँ है? चिलीमिली साहब? चला, बंदूक चला। चिलिमिली साहब शिगा पर क्या बोल रहा है?

"तिलका मुर्मू, तिलका मुर्मू! तिलका मुर्मू!"

तिलका चुप।

"तुम अपने लोगों को लौटाओ, लौटाओ!"

"तुम अपनी फ़ौजें लौटाओ पहले।"

चिलीमिली साहब समझ नहीं पाया, आवाज़ कहाँ से आयी?

"तुम कंपनी के इलाके में दंगा-हंगामा कर रहे हो। कल रात से बहुत-

से सिपाहियों की जानें ली हैं। कंपनी और फ़ौज बुलाकर तुम्हें इलाके से बाहर कर देगी।"

"जंगल के इलाकों में तुम बेहक घुसे हो, निरीह आदमियों को मार रहे हो, घर जला रहे हो। हम तुम्हें यहाँ से बाहर कर देंगे।"

शिगा फेंक कर क्लीवलैंड ने विद्युत वेग से तिलका की तरफ़ बंदूक उठायी। तिलका गुलेल से गोलियाँ चलाता रहा दना-दन। गुलेल तिलका का बड़ा विश्वासी और प्रिय हथियार है। तिलका चिल्लाया, "निकल जाओ हमारे इलाके से, निकल जाओ!" क्लीवलैंड नीचे गिर गया। मस्तक-विहीन कंपनी फ़ौज। जयोल्लास की ध्वनि उठी—'हुल! हुल!'

ऑगस्टस क्लीवलैंड की मृत्यु हुई 13 जनवरी 1784 ई० में। भागलपुर में भयानक आतंक। तिलका माझी कौन है? कंपनी साहब के महल में विभ्रांति—तिलका माझी और तिलका मुर्मू दो नाम क्यों?

फिर कंपनी के एक-साला, पँच-साला और दस-साला बंदोवस्त से कई ज़मीन-फोड़ ज़मींदार आगे आये, जिन्होंने फ़ौजें बना रखी थीं। 'हाथी, घोड़ा, सिपाही बंदूकें, सब हम से लो। पर तिलका माझी के कराल हाथों से हमें बचा लो।'

क्लीवलैंड की समाधि पर वारेन हेस्टिंग्स के आदेश पर अच्छी-अच्छी बातें लिखी गयीं—"तलवार से नहीं, प्रेम से उन्होंने जीता था राजमहल जंगल-सीमान्त के 'लॉलेस' बर्बर आदिवासियों को। जीवन का मर्म समझाया था उन्हें। उनका मन जीत कर ब्रिटिश सरकार के साथ अटूट बंधन में बाँध दिया था।"

तिलका ने सोचा कि 13 जनवरी के युद्ध में हारने पर कंपनी सरकार जंगल में जरूर घुसेगी।

तिलका यह नहीं जानता था कि जीत हो या हार, कंपनी जंगल के भीतर घुसेगी ज़रूर। 1777 में पँच-साला बंदोवस्त ख़त्म हुआ। अब चला दस-साला बंदोवस्त। फिर 1781 में अचानक ही कंपनी ने सरकारी लगान की रक़म एक बार में 21 लाख रुपये बढ़ा दी। इस ख़ज़ाने को बटोरने के लिए जहाँ भी कुदाल चलती हो, वहाँ से रुपये लाने होंगे। इसीलिए तिलका के लोगों को ठंडा करना जरूरी है। तिलका! वह नहीं जानता था कि

1780 से मैसूर में हैदर अली फ्रांसीसियों की सहायता से अंगरेज़ों से लड़ रहे हैं। हैदर के विरुद्ध सेना भेजने के लिए उड़ीसा दखल करना ज़रूरी है। उड़ीसा का दख़ल मतलब, मेदिनीपुर के जंगल, ज़मींदार और आदिवासियों को वश में करना। सब चाहिए कंपनी को। विद्रोह हुआ 1780 के दशक में। विद्रोहों का दशक है यह। संन्यासी-विद्रोह अभी ख़त्म नहीं हुआ। हेस्टिंग्स कैसे सहन करता राजमहल और भागलपुर के बीच संथाल तथा पहाड़ियों का विद्रोह? कैसे चलने देता यह हुल?

गुलेल से क्या साहब को मारना संभव है? हेस्टिंग्स जानना चाहता था। फिर उसे बात समझ में आ गयी। क्लीवलैंड उसी से मरा। तब गुलेल से लड़ना संभव है।

'सेना भेजो। गाँव-गाँव में पुलिस बैठा दो।'

गवर्नर-जनरल की यही इच्छा है। फ़ौज और पुलिस। मार्च, मार्च, मार्च!

सर्जन जैसे लोग संगीन खा-कर ध्वस्त हो गये। अब मार खाकर या मार कर भागने का रास्ता भी नहीं रहा। गाँव-गाँव में पुलिस। हाथ-हाथ में बंदूक। आदिम राजहंसिनी की संतान आज फिर यायावर बनेगी। इतिहास यही चाहता है। कंपनी की फ़ौज आती जा रही है, चारों तरफ़ बिखरती जा रही है। भागलपुर में नये कलेक्टर का आदेश—'संथाल मात्र विद्रोही हैं। देखते ही गोली मार दो। तिलका को पकड़वा दो। उसके अनुयायियों को पकड़वा दो। हम तुम्हें माफ़ कर देंगे।'

गांव-गांव में, पति ने पत्नी को, बाप ने बेटे को, माँ ने बेटी को, भाई ने बहन को, सभी ने सभी को शाल-छाल की राखी बांधी। सारे परगनायेत और देशमाझियों ने तिलका से कहा, "यही ठीक है, तिलका! पकड़े गये तो क्या वे हमें छोड़ देंगे? लड़के-बच्चों, औरतों, बूढ़ों को या तो छिपा देते हैं या दूर भेज देते हैं। अपने हाथों में शाल-गिरह बांध कर जितना लड़ सकते हैं, लड़ेंगे। नहीं तो मरेंगे। तू अपने मन में कुछ मत रख।"

"मैं पकड़वा देता हूँ अपने को।"

"नहीं! समाज की इज़्ज़त को मिट्टी में नहीं मिलने देंगे!"

महर, तिलका का ससुर, तिलका का हाथ पकड़ कर बोला, "आज

समझा रे ! ऐसे ही चिलिमिली साहेब और कंपनी तब भी रहे होंगे। तभी तो हम बेदर हुए। कभी एक देश में जाते हैं और कभी एक देश छोड़ते हैं, ऐसा क्यों ? वे थे, ज़रूर थे तब भी !"

"मुझे बहुत दुख होता है, छाती फट जाती है।"

"नहीं ! तिलका, नहीं !"

"इतने, इतने लोगों की मौत !"

"नियम से समाज नहीं जुटा पाया, यही ना ? देवता सब जानते हैं। दोष नहीं होगा कुछ।"

मनसा का बाप, पहाड़िया सरदार इस संकट-काल में उतर आया नीचे। सोमी से बोला, "माँ री ! हमारे घर चल। बहू-नाती-नतिनी को साथ लेकर चल। गाँव के सभी औरत-बच्चों को भी लेकर चल, माँ ! औरतों की इज़्ज़त कंपनी नहीं छोड़ती।"

तिलका बोला, "तुम ले जाओगे इन्हें ? किस बूते पर इतना भार ?"

"लेना ही होगा।"

"कैसे ? किस पर ?"

"इन दोनों हाथों पर। मुझे भी गिरह बाँध दे, तिलका ! मनसा का बाप हूँ। मैं तेरे बाप के भी समान हूँ।"

मनसा के बाप के हाथों की गिरह में तिलका के आँसू भी थे। सोमी और रूपा ने तिलका को एक बार छुआ, उसके सिर पर हाथ फेरा। फिर गाँव के तमाम बूढ़े-बुढ़िया और बच्चों को लेकर वे चली गयीं, बगैर पीछे देखे।

हारा सूखे गले से बोला, "जो जहाँ भाग पा रहा है, भाग रहा है, मैदानों में।"

तिलका बोला, "जानता हूँ।"

फिर कहने लगा, "हारा, याद रखना। जो कह रहा हूँ, सभी लोग सुनें। अगर बचो तो सभी को साथ मिला लेना। संथाल अब यहाँ नहीं रहेंगे।"

"क्यों ?"

"सब बिखर जाओ अलग-अलग दिशाओं में। धरती कितनी बड़ी है

रे, पहले नहीं जाना, अब जानेंगे। कंपनी की फ़ौज ने हमें यह सिखाया। हम जायेंगे पूर्णिया, चंपारण, सिंहभूम, धनबाद, बाँकड़ा, वीरभूम, मेदिनीपुर, पुरुलिया—कहीं चाय बगान में, कहीं कोयला खदान में। जहाँ जायेंगे वहाँ के रीति-रिवाज हमारे समाज में घुसेंगे, हमारे रीति-रिवाज उनके समाज में।"

"कब तिलका, कब ?"

"तू जान जायेगा।"

"तू नहीं जानेगा ?"

"मैं ?" तिलका हँसा। बोला, "अपने गाँव की माँ, बेटी, बहू, बहन तो बच गयीं। लेकिन दूसरे गाँव में क्या हुआ ? चल ! अब निकल चल।"

कहीं से कुछ टूट गया है तिलका के भीतर। अभी तूफ़ान के बादल छाये हुए हैं। अभी ही उल्कापात हुआ है। अब उसके पास कुछ सौ लड़ाकू मात्र हैं। छोटे-छोटे दलों में बिखर जाओ। बहू-बेटी-बच्चे, बूढ़े-बुढ़िया को लेकर जहाँ भाग सकते हो, भाग जाओ। नहीं तो उनके भागने की व्यवस्था करो। और फिर लड़ो। आओ लड़ो !

इसी तरह चलता रहा पहला हुल ! एक साल पूरा होने को आया।

"हो, तिलका हो !" कहते हुए दो सौ पचीस लड़ाकू पहाड़िया आये। उन्हें कंपनी ने बहुत दूर भेज दिया था। इन पहाड़िया सिपाहियों में काफ़ी मारे गये हैदर के साथ लड़ाई में। जो बचे वे लौट कर आये तो देखा, गाँव श्मशान हो गया है। तिलका माझी को ढूँढ़ने सेना घुसी थी। सब चले गये हैं। पता नहीं कहाँ ?

"हम फ़ौज में जाकर उनके लिए लड़े और वे हमारे गाँव श्मशान बना दें ? तिलका, तू तो है ! तेरे साथ लड़ेंगे हम। बदला लेंगे !"

"चलो।"

"कहाँ ?"

"तिलकपुर के जंगल में। कंपनी की फ़ौज वहीं से होकर आगे जाती है।"

तिलकपुर के जंगल में छुप-छुप कर लड़ाई चलती रही। दिन के बाद दिन। दिन, और दिन।

एक दिन भोजन खत्म हो गया।

एक दिन तीर ख़त्म हो गये।

तिलका बोला, "नयी गिरह बाँध, भाई! टाँगी-फरसे लेकर निकलें।" जंगल निःशब्द। बैनेट और बंदूकें प्रतीक्षारत। उनका धैर्य अनंत है। गिरह बाँधते-बाँधते तिलका हँसा। दबे स्वर में बोला, "वे सोचते हैं कि हम मर गये हैं। मगर मर के बच सके तो फिर तितापानी का जंगल।"

"हाँ, तिलका!"

"सारे गाँवों को पहाड़ के ऊपर ले जायेंगे।"

"हाँ, वही ठीक रहेगा।"

"पहाड़ की ढाल पर चीना धान ऐसे छींटूंगा...," तिलका मिट्टी बिखेरता हुआ बोला, "खेती में मन लगता है मेरा।"

"चल!"

'हु—ल' की ध्वनि के साथ प्रचंड गर्जन करते हुए वे कुछ बंदरों की तरह निकल पड़े। बंदूक और बैनेट। टाँगी और फरसे। फ़ौज का समुद्र घेर रहा है, घना हो रहा है। हारा गया, तिभुवन गया। अंधेरा और घना हो रहा है। तिलका टाँगी चला रहा है। सब बिखर जायेंगे। 'हुल' नहीं हुआ? राजमहल की मिट्टी में तिलका का खून बिखर रहा है। 'हुल' के बीज डाल रहा है। इसे पोसेगा कौन? इस हुल की फ़सल को कौन अपने घर ले जायेगा? वह तिलका नहीं। वह कौन है?

ललाट बिंध गया। कंधे में कुछ घुस गया है। फिर एक उन्मत्त चीत्कार, "वह तिलका नहीं, मुझे पकड़ो!"

तिलका हँस पड़ा। कौन उसे बचाना चाहता है? हँसी के साथ ही खून के फ़व्वारे भी छूटे।

भागलपुर बाज़ार। खून से लथपथ तिलका को कोड़े मारे जा रहे हैं। दर्शक भागे। चाबुक की साँय-साँय। तिलका ने पलकें उठायीं। हुल होगा, तिलका का मन जानता है।

घोड़े की टाँगों से बँधा तिलका। घोड़ा भागा। तिलका का शरीर क्षत-विक्षत हो गया। चेतना ख़त्म। आ रही है, जा रही है। घोड़ा रुका।

"अब भी बोलने की चेष्टा कर रहा है?"

प्रेतोत्सव

राजापुर गांव शहर से ज़्यादा नहीं, सिर्फ़ चार मील दूर है। राजापुर के राजाबाबू बहुत दिनों तक मंत्री रहे हैं। अपार जमीन-जायदाद है। शहर में बड़ा सुंदर बंगला है। राजापुर में उनके अनेक भाई-बंधु रहते हैं। चारों तरफ़ के सूखे और ग़रीब गांवों के बीच राजापुर का हरा-भरा क्षेत्र अनायास ही ध्यान खींच लेता है। सब कहते हैं कि यह राजाबाबू का घर है।

राजाबाबू के कानों में भी बात पड़ी थी। उन्हें अच्छा नहीं लगा था। गांव लौटकर उन्होंने तीनों भाईयों से पूछा, "यह क्या सुन रहा हूँ ?"

"क्या, मणि की बाबत ?"

"हां, उसे कौन-सी ज़मीन मिली है ? लड़कों को तेल के कारखानों में नौकरी पर लगा दिया है।"

"उसी अशोक के कारण।"

"समझा। तो क्या मिला उसे—टीला ?"

"नहीं, नीचे वाली ज़मीन !"

"और ?"

"और क्या बताऊँ...कहने को और क्या है ? खड्डे के पार वाली अच्छी ज़मीन मिली है।"

"कितनी ?"

"जितनी भूमिहीनों को मिलती है।"

"अच्छी ज़मीन, धान की ज़मीन। घर से मूनिश-माहिन्दार नहीं थे ?"

"इससे क्या हुआ ? अशोक ने कौन-सी घंडी घुमायी, पता नहीं। जिलाधीश बोला, बाबा मुंशीराम, जिन्होंने तुम्हें माहिन्दार बनाया

है उन्हीं से कहो न पाँच बीघा ज़मीन देने के लिए। उनकी ज़मीन हथियाने का कोई उपाय नहीं है। तुम्हें ही दे देते। मुझे क्या, चाहे राम को मिले, चाहे श्याम को मिले। अशोक पार्टी का लड़का है, वह जो कहेगा, करना ही होगा।"

"अशोक ने मणि लोगों को पता नहीं, क्या समझाया ?"

"उसके मुँह पर सिर्फ़ एक ही बात है। राजाबाबू अब हमारी-तुम्हारी श्रेणी के नहीं हैं, वे अब मालिक श्रेणी के हो गये हैं। कोई अगर यह कहे कि तुम भी संथाल हो और वे भी संथाल हैं तो तुम कहना कि वे मालिक हैं और हम नौकर। तुम कहना कि वह जब से मंत्री हुए हैं, उन्होंने खूब रुपये कमाये हैं, ज़मीन हथियायी है तभी से।"

"समझा ! वह दूसरे वर्ग के हुए।"

"हाँ, मेरा यही कहना है।"

राजाबाबू और उनके शिक्षित और कॉलेज-अध्यक्ष भाई ने एक-दूसरे की तरफ़ देखा। राजाबाबू ने गंभीर निश्वास लिया। बोले, "ज़रा देर बैठूं।"

बैठकर, आराम करके, हवा खाकर, राजाबाबू बोलने लगे, "यह सब हवा बदलने का कुफल है। अशोक जैसा बिच्छू आदिवासियों के मन में हिंसा घुसा रहा है। वे हमारे शहर वाले घर को देखते हैं। गाँव के घर को देखते हैं।"

फिर उन्होंने साँस ली। बोले, "एक बात वह नहीं सोचता। मेरे पास जितना है, दूसरी जाति वालों के पास उससे ज़्यादा, तिगुना है। तुम भी शहर में घर बना सकते थे, ज़मीन बटोर सकते थे। किसी दिन भी तुमने देश की सेवा नहीं की। यह अशोक क्या बातें करता है, मेरी तो समझ में नहीं आता। इतना वर्ग-असंतोष, इतना अलगाव क्यों ? हमारी राजनीति में इतना अलगाव था कभी ? अभी भी नहीं है। इतनी हिंसा भी नहीं है।"

"यह कौन समझता है ?"

"मैं दूसरे वर्ग का हूँ...वह कैसे ? क्या मैं पूजा-पर्व को नहीं मानता ? क्या मैं नायक को सम्मान नहीं देता ? कर्म-कांड, अनुष्ठान आदि को नहीं मानता ? बाप रे ! अब कौन मगज़पच्ची करे ? भाग्य-

प्रेतोत्सव

राजापुर गांव शहर से ज़्यादा नहीं, सिर्फ़ चार मील दूर है। राजापुर के राजाबाबू बहुत दिनों तक मंत्री रहे हैं। अपार ज़मीन-जायदाद है। शहर में बड़ा सुंदर बंगला है। राजापुर में उनके अनेक भाई-बंधु रहते हैं। चारों तरफ़ के सूखे और ग़रीब गांवों के बीच राजापुर का हरा-भरा क्षेत्र अनायास ही ध्यान खींच लेता है। सब कहते हैं कि यह राजाबाबू का घर है।

राजाबाबू के कानों में भी बात पड़ी थी। उन्हें अच्छा नहीं लगा था। गांव लौटकर उन्होंने तीनों भाईयों से पूछा, "यह क्या सुन रहा हूं?"

"क्या, मणि की बाबत?"

"हां, उसे कौन-सी ज़मीन मिली है? लड़कों को तेल के कारखानों में नौकरी पर लगा दिया है।"

"उसी अशोक के कारण।"

"समझा। तो क्या मिला उसे—टीला?"

"नहीं, नीचे वाली ज़मीन!"

"और?"

"और क्या बताऊं...कहने को और क्या है? खड्डे के पार वाली अच्छी ज़मीन मिली है।"

"कितनी?"

"जितनी भूमिहीनों को मिलती है।"

"अच्छी ज़मीन, धान की ज़मीन। घर से मुनिश-माहिन्दार नहीं थे?"

"इससे क्या हुआ? अशोक ने कौन-सी घंडी घुमायी, पता नहीं। ज़िलाधीश बोला, बाबा मुंशीराम, जिन्होंने तुम्हें माहिन्दार बनाया

है उन्हीं से कहो न पाँच बीघा ज़मीन देने के लिए। उनकी ज़मीन हथियाने का कोई उपाय नहीं है। तुम्हें ही दे देते। मुझे क्या, चाहे राम को मिले, चाहे श्याम को मिले। अशोक पार्टी का लड़का है, वह जो कहेगा, करना ही होगा।"

"अशोक ने मणि लोगों को पता नहीं, क्या समझाया ?"

"उसके मुँह पर सिर्फ़ एक ही बात है। राजाबाबू अब हमारी-तुम्हारी श्रेणी के नहीं हैं, वे अब मालिक श्रेणी के हो गये हैं। कोई अगर यह कहे कि तुम भी संथाल हो और वे भी संथाल हैं तो तुम कहना कि वे मालिक हैं और हम नौकर। तुम कहना कि वह जब से मंत्री हुए हैं, उन्होंने खूब रुपये कमाये हैं, ज़मीन हथियायी है तभी से।"

"समझा ! वह दूसरे वर्ग के हुए।"

"हाँ, मेरा यही कहना है।"

राजाबाबू और उनके शिक्षित और कॉलेज-अध्यक्ष भाई ने एक-दूसरे की तरफ़ देखा। राजाबाबू ने गंभीर निश्वास लिया। बोले, "ज़रा देर बैठूं।"

बैठकर, आराम करके, हवा खाकर, राजाबाबू बोलने लगे, "यह सब हवा बदलने का कुफल है। अशोक जैसा बिच्छू आदिवासियों के मन में हिंसा घुसा रहा है। वे हमारे शहर वाले घर को देखते हैं। गाँव के घर को देखते हैं।"

फिर उन्होने साँस ली। बोले, "एक बात वह नहीं सोचता। मेरे पास जितना है, दूसरी जाति वालों के पास उससे ज्यादा, तिगुना है। तुम भी शहर में घर बना सकते थे, ज़मीन बटोर सकते थे। किसी दिन भी तुमने देश की सेवा नहीं की। यह अशोक क्या बातें करता है, मेरी तो समझ में नहीं आता। इतना वर्ग-असंतोष, इतना अलगाव क्यों ? हमारी राजनीति में इतना अलगाव था कभी ? अभी भी नहीं है। इतनी हिंसा भी नहीं है।"

"यह कौन समझता है ?"

"मैं दूसरे वर्ग का हूँ...वह कैसे ? क्या मैं पूजा-पर्व को नहीं मानता ? क्या मैं नायक को सम्मान नहीं देता ? कर्म-कांड, अनुष्ठान आदि को नहीं मानता ? बाप रे ! अब कौन मगज़पच्ची करे ? भाग्य-

दोष से मुंशीराम हमारे पास नौकरी करता है और वैसे भी मैं क्या हो गया हूँ ?"

"अशोक इत्यादि तो सुनते नहीं।"

"दरअसल वे ही दूसरे वर्ग के प्रतिनिधि हो गये हैं। चलो, छोड़ो। ज़मीन के बारे में बता।"

"ज़मीन की बात ? मणि को ज़मीन मिली, उसके लड़कों को तेल-कारखाने में काम। वे हमारी बात अब क्यों सुनें ? गाँव में रहते हैं तो दबाव भी रखना पड़ता है। तुम्हारे मंत्री होते हुए जो नहीं हुआ, वह अब हो रहा है।"

"तभी मणि गरम है ?"

"नहीं। पहले कर्ज़ा लेकर ज़िंदा रहता था। वह अब नहीं लेता।"

"मणि के बाप-दादा ?"

"उन्हीं को लेकर बैठा है। वे बूढ़े हैं, उन्हीं के पास है। उसकी लड़की को भी गरमी चढ़ी है।"

"किसको ? रजनी को ?"

"हाँ। खूब गरम है। खेतों में धान पैदा होने पर वह खूब नाची-गायी। चावलों के दाने बाँटे।"

"रजनी का कोई बच्चा है ?"

"है।"

"पति, वही डॉक्टर है न ?"

"वह ठीक है। रजनी को बहुत प्यार करता है। रजनी जो कहती है, उसकी हाँ में हाँ मिलाता है।"

"मणि का लड़का सोमराई ?"

"वह चुप रहता है। रास्ते पर दीखने पर अनदेखा कर देता है। सामने ही पड़ जाओ तो काँपता हुआ 'परनाम बाबू' कहता है। हाथ बड़े कष्ट से सिर से लगाता है। इसी से समझ लो, गरमी है कि नहीं ?"

"देखना होगा।"

"एक बात और है।"

"वह क्या ?"

"इस लखिन्दर का धंधा मेरी समझ में नहीं आता। जान-पहचान का आदमी है, सम्बन्ध भी हैं, लेकिन उसकी ज़मीन हमारे साथ नहीं है, बस। हमारी दो-फ़सली ज़मीन और उसकी चार बीघे लेकर खींचतान हो रही है। मैंने तो सोच लिया है कि तुम से या तुम्हारे बाद बहू से रुपया लेकर धर्म के नाम पर उसे ख़रीद लूंगा। तुम एक लड़की को पोसो, उसी को सब दे जाना। यही झमेला है।"

"हाँ, है तो।"

"उपाय भी क्या है?"

उस समय खीरोदबाबू की आँखें सपनीली हो गयीं। बोले, "जो भी करना हो समझ-बूझ कर करना।"

"तुम यदि कुछ न कहो और मैं जो कहूँ वह करते जाओ, तभी काम ठीक से हुआ समझो!"

"हाँ, वह तो है।"

"ग़लती की तो मरे।"

"नहीं, ग़लती नहीं करूंगा।"

"मातंग से भी कुछ मत कहना।"

"धत्! मातंग पर विश्वास करूँ? राजनीति में नहीं, हमारी पार्टी में नहीं। उम्र ज़्यादा है। समाज का भला करने के पीछे उसने तो कमर कस रखी है।"

"वह क्या झारखंडी है?"

"नहीं। कभी नहीं रहा। उसको अपने खंड से ही फुरसत नहीं है। कहाँ किसकी ज़मीन छिनी, किसे लोन नहीं मिला, कहाँ पानी नहीं है—इसी चक्कर में बेटा साइकिल पर घूमता रहता है। तुम्हें यह मालूम नहीं है कि अगर एक आदिवासी घर का खाकर जंगल की भैंस हांकता है तो सब उस पर शक करते हैं?"

"मुझे तो खूब सुनायी। आप शहर के तमाम मुहल्लों में, बाज़ारों में कल्याणकारी समितियां क्यों घुसा रहे हैं? उन सालों के पास तो लाख-लाख रुपये हैं और काम सिर्फ़ एक है। यहां सभा बुलाओ, वहां मीटिंग करो और रुपये देकर ग़रीबों को सिखाओ कि मेरे बाप, अब जो कुछ करो, दम मत

बनाओ। दल बनाना बड़ा ख़राब काम है। ये साले, जासूस हैं। समझे ?"

"यह कहा है ?"

"हां, कहा है।

"तुमने क्या कहा ?"

"मैंने पूछा कि किसके जासूस हैं ? मातंग बोला, 'उनके जो रुपये दे रहे हैं। सब विदेशी जासूस हैं।' मैने कहा, बेटे ! विदेश में अच्छे लोग रहते हैं। धनी देश के लोग गरीब देश का भला करना चाहते हैं। तभी ये समितियां बनी हैं। इसे ग़लत क्यों समझते हो ?"

"जो खुद बुरा है, सभी को बुरा कहता है। देश में क्या कोई शासन नहीं है, सरकार नहीं है ? सरकार क्या नहीं जानती कि कौन-सा देश हमें रुपये देता है ?"

"पर अशोक वग़ैरह तो दूसरी बात कहते हैं।"

"वह क्या ?"

"कहते हैं कि इसमें तुम्हारा हाथ भी है। तुम्हीं ने अनुमान लगाया था कि जंगल-टंगल को लेकर आंदोलन होगा बड़ा जोरदार। तब ही इन लोगों को घुसाया तुमने। उनके लिए राह बनायी।"

"सभी जगह हमारा हाथ देखता है।"

राजाबाबू बड़े दुखी हुए। उन्होंने जो काम कभी नहीं किया, उसी काम का आरोप हमेशा अपने ऊपर लगते सुनते हैं। इस अंचल से वे मंत्री थे। बेशक उन्होंने अपने इलाक़े में सड़कें और जंगल-जमीनों का कोई इंतजाम नहीं कराया। यह बात भी सच है कि लोधा, बिरहड़ पहाड़ियो के लिए भी उन्होंने कुछ नहीं किया।

अब यह सब है क्या ? जीवन में क्या कुछ चिरस्थायी है ? सड़कें-रास्ते अपने-आप वक़्त के कारण टूट जाते हैं, टीले बराबर हो जाते हैं। ज़मीन ? राजाबाबू तो राजनीति करते हैं। उन्हें क्या पता कि हर साल नये क़ानून बनते हैं और छोटे खेतिहरों की ज़मीन छिन जाती है। जो होता है, समय की गति से होता है। वे कौन हैं काल-गति में बाधा डालने वाले ? लोधा-बिरहड़-पहाड़िया ? नहीं, वे आदिवासी हैं। इस कारण वे आदिवासियों का ही भला सोचें—ऐसी संकीर्णता उनमें नहीं है। ठीक है, यह

सब उन्होंने नहीं किया। पर जो किया है, उसके बारे में कोई कुछ क्यों नहीं कहता? कितनी सभाएँ की हैं, कितनी मीटिंगों को संबोधित किया है, हज़ारों माल्यदान किये हैं। यह भी तो सम्मानजनक काम है रे! इसे भी तो समझो!

"अशोक खूब जला रहा है, है न?"

"खूब।"

"इसी को कहते हैं घर का भेदिया। इस पर विश्वास करता था, साथ लिये घूमता था।"

"अब समझना होगा।"

"अब क्या हो सकता है? उनासीवाँ साल आ गया। यह राज तो लगता है, टिक जायेगा।"

"तो?"

"वहू माँ, मतलब चरन की पत्नी अब कैसी है।"

"माँ के पास है।"

खीरोद की माँ, राजाबाबू की चाची धीरे-धीरे पास आकर खड़ी हो गयीं। उनकी एक आँख पत्थर की है। चेचक में एक आँख चली गयी थी। ज़िंदा आँख चील की तरह तेज़ है। सब कहते हैं, राईमणि की आँख में दैवी क्षमता है। जिसे कोई नहीं देख सकता, उसे राईमणि देखती हैं। साधारण गरीब-गुरबे उनसे डरते हैं। जब मंगला को साँप ने काटा था, तो यह सुनते ही उन्होंने कह दिया था, "अस्पताल ले जाने पर भी बचेगा नहीं। हाँ, रात-भर रखो, सवेरे ले जाओ।" पर लोग साइकिलें जोड़, डोली बनाकर उसे ले गये थे रातोंरात अस्पताल। पर रात को डॉक्टर ने उसे नहीं देखा। सवेरे जब देखा तो वह खत्म हो चुका था। उनकी बात सच निकली।

राईमणि बोली, "वहू माँ को कोई रोग नहीं है।"

"क्या कहती हो?"

"रोग होता तो छूट जाता है। लड़का होने पर सूतक होता है, दवा से खत्म नहीं होता, हमारे घर में पूजा-पाठ होता है। हमारे घर में तुम्हारे होने पर भी वहू क्यों अच्छी नहीं होती?"

"क्यों नहीं होती ?"

"किसी डाइन ने बाण मारा है।"

"डाइन ?"

"हाँ बेटे ! डाइन-भूतिन इस गाँव में ही हैं। डाइन-भूतिन लोग ऐसे ही नहीं बनते। शत्रुता मन में पोस कर ही बनते हैं।"

राजाबाबू के मन में जैसे कोई प्राचीन साँप अंगड़ाईयाँ ले रहा है। मणि और उसकी पत्नी सोमराई, लखिन्दर और उसकी पत्नी। डाइन-भूतिन होने पर भी क्या कुछ बाक़ी रहता है ? मणि ने अच्छी ज़मीन पायी। सोमराई का बेकार लड़का तेल-कारख़ाने में नौकरी करता है। वह डाइन है। मणि भी डाइन है। लखिन्दर अपनी ज़मीन को पकड़कर बैठा है। उस ज़मीन को अपने क़ब्ज़े में रखने के लिए वह एक लड़की को पोस रहा है। उसको बोर्डिंग में रखकर पढ़ा रहा है। शादी करे और सारी ज़मीन उसे दे दे, यही इच्छा है उसकी। लखिन्दर भी डाइन है।

हैं, और भी हैं। मणि की बस्ती में और भी भूमिहीन हैं। अर्धशिक्षित बेकार युवक भी हैं। अशोक जैसे लड़के भी हैं। डाइन-भूतिन भी हैं बहुत।

"काकी, तुम ठीक कहती हो ?"

"विश्वास नहीं होता ? दो नवयुवतियाँ घर पर भी तो हैं—माधवी और शेफाली। कॉलेज में पढ़ती हैं, घर में रहती हैं। वे ही बतायेंगी डाइन का नाम !"

"डाइन ?"

"हाँ, डाइन।"

राजाबाबू रोगिणी के दरवाज़े पर खड़े थे। चरन की बहू भी पढ़ी-लिखी है। चरन सरकारी कर्मचारी है। खीरोद कॉलेज प्रिंसिपल है। काका, राईमणि का पति रिटायर्ड सब-जज है। और बड़े दादा तारानाथ गाँव-पंचायत के सदस्य हैं। ऐसे दम-ख़म का आदमी क्या यह सब सहन कर सकता है ?

छोटी बहू बिछौने पर पड़ी है। राजाबाबू के मन में क्रोध बढ़ता गया। अच्छे-भले पेड़ को चोटियाँ लग रही हैं। ऐसे नौजवान को विष देकर मार

देना, क्या सहन किया जा सकता है ?

घर के लोग पीछे आकर खड़े हो गये ।

चरन बोला, "भैया, अब क्या देखते हो ?"

राजाबाबू की आँखें लाल थीं । वे गरज उठे, "आज भी मेरी शक्ति कम नहीं है । ज़रूरत पड़ने पर दिल्ली तक दौड़ सकता हूँ । जिसने ऐसा किया है, उसकी लाश नाले में फेंक दूँगा । कागज़-कारख़ाने की गंध में लाश का पता तक नहीं चलेगा ।" विश्वनाथ, तारानाथ, खरोद, चरन—सब एक-दूसरे का मुँह ताकते रहे।

फिर विश्वनाथ बोला, "गुस्से में कोई काम मत करो । जो करो, उसकी घोषणा मत करो । दीवारों के कान होते हैं । देखो ! हम धर्म-पथ पर हैं, जीत हमारी ही होगी ।"

रोगिणी थोड़ा हिली । फिर करवट लेते वक़्त दर्द से चिल्लायी, "अरे बाप रे ! मर गयी रे ! मार दिया रे !"

राईमणि बोली, "बाण मार दिया है, और क्या ?"

राजाबाबू बोले, "बाण तो मैं भी मारूँगा, पर समाज को साथ लेकर ।" सबने हामी भरी ।

"चलो, सब बड़े कमरे में चलते हैं ।"

कमरे में पहुँच कर राजा बाबू बोले, "बड़े हिसाब से काम करना होगा । सुनो !"

सब चुपचाप सुनते रहे । राजाबाबू बोलते रहे । राजाबाबू की ज़रूरत के मुताबिक़ डाइन का जन्म होता गया ।

2

अशोक चीख़ रहा था, "हम अपनी इस विचारधारा के होते कभी आधुनिक नहीं हो सकते हैं । यही हमारे पिछड़ेपन का कारण है । हमारे बीच

जो शिक्षित हैं, नौकरी करते हैं, वे समाज के निम्नवर्गीय लोगों के बारे में नहीं सोचते। धान की खेती और गायें। बस। सिर्फ़ इसकी चिंता ही पिछड़ापन नहीं है। आगे बढ़ना होगा, आधुनिक होना होगा, विचारों से आधुनिक। आज के युग में इतना काफ़ी होगा।"

मणि बाहर उड़द सुखा रहा था। वह कानों से कम सुनता है। उसकी जान अब इन्हीं में लगी रहती है। उड़द फैला-फैला कर धूप दिखाता रहता है। अपनी ज़मीन से पैदा दाल है, यही क्या कम है? सब सार्थक हो गया। इतनी पूजा-पाठ की, सब सार्थक हो गया। 'ओ भाई भूमिहीनों, ज़मीन नहीं मिलेगी। ओ भाई!' एक ही बात बोल-बोल कर उसका गला सूख गया था। फिर अशोक, कल का बच्चा है, उससे मातंग ने कहा था, "कुछ कर नहीं सकते, अशोक?"

"क्या?"

"मणि के जैसे कितने ही घर हैं। उन्हें क्या ज़मीन नहीं मिलेगी? उन्हें लेकर तो इतनी बड़ी-बड़ी बातें हो रही हैं!"

"दादा, तुम जानते नहीं। भूमिहीनों को ज़मीन मिलेगी, इसी बात को रोकने के लिए राजाबाबू ने चारों तरफ़ अपने लोगों को बसा दिया है। सिर्फ़ मुंशीराम को नहीं मिली है। सारे भूमिहीनों के नाम पर ज़मीन है। पर सारी ज़मीन उनके दख़ल में है। बेवकूफ़ पार्टी को कुछ पैसा खिला कर और 'मेरे हाथ में थाना-पुलिस है, मेरे हाथ में दिल्ली है' कह कर सभी को वश में कर रखा है।"

"ठीक है! राजाबाबू के बारे में सभी जानते हैं। पर बेटे, अब तो उसकी सरकार नहीं है। सब गड़बड़ी तो उन्होंने की है, तुम तो जानते हो। ठीक है, तर्क का काम नहीं। सारे अच्छे काम तुम अकेले तो करने से रहे। फिर भी कुछ तो करो।"

"इसीलिए तो," कहते-कहते अशोक चुप हो गया। फिर उसने राजापुर के भूमिहीनों की तरफ़ से दरख़ास्त दी थी। दूसरे लोग डरे। जल में रह कर मगरमच्छ से बैर!

अगर राजाबाबू के गाँव में रहकर सरकार से ज़मीन लोगे तो तारानाथ बाबू गरम होंगे, विश्वनाथ बाबू गरम होंगे और राजाबाबू तक

बात पहुँचेगी। अरे बाप! वह तो दिल्ली को भी अपनी मुट्ठी में रखते हैं।"

किसी को साहस नहीं हुआ, सिर्फ़ मणि को छोड़ कर। मुंशीराम में बुद्धि शुरू से कम है। वह भी गया था।

अशोक की कोशिश से ज़मीन मिली। मातंग की चेष्टा से लड़कों को नौकरी। तभी से मणि दूसरा आदमी हो गया है। अशोक और मातंग आते हैं, उसके घर में बैठते हैं, बातें करते हैं, वैसी बातें मणि ने पहले कभी नहीं सुनीं।

तभी उसने कहा, "क्यों रे अशोक, क्या कहता है? किसे पहुँचाना होगा और कहाँ?"

"आधुनिक युग में!"

"वह कहाँ है?"

"तुम्हारे सिर में।"

"ना बाबू, वहाँ नहीं पहुँचा जा सकता। जब जवान था तो खटने पहुँचा था—मुर्शिदाबाद। फिर अकाल के समय गया हावड़ा। इतनी उम्र ढल चुकी है, अब कहाँ जाऊँ? संभव है?"

"और कहाँ जाओगे? मैं क्या कहता हूँ, तुम्हारी समझ में नहीं आता। आधुनिक युग में पहुँचना, यही कह रहा हूँ।"

मातंग बड़े ध्यान से पता नहीं क्या लिख रहा था। बोला, "घर में शांति नहीं। रेडियो की कचर-पचर। चार मील चल कर यहाँ आया, उस पर तुम्हारी यह चीख़-चिल्लाहट। पहले तू आधुनिक युग में पहुँच, फिर हमें ले जाना। बाप रे! कितना चिल्लाता है!"

"ये बातें नहीं करनी होंगी क्या?"

"तू तो बड़ा ज्ञानी है। अब इन्होंने किया क्या है कि इनसे कह रहा है कि यह करना होगा, वह करना होगा? खुद ही तो तूने कहा कि शिक्षित लोग समाज की तरफ़ नहीं देखते। शिक्षित होने पर भी प्रकृति शिक्षित नहीं होती और जिन्हें तू अशिक्षित समझता है, वे सचमुच अशिक्षित नहीं हैं।"

"यह कैसे मान लूँ?"

"क्यों नहीं मानोगे, बेटा ? वे बीमारी पर डाक्टर के पास नहीं जाते, धनराज महतो के पास जाते हैं। तुम कहोगे, धनराज डाक्टर नहीं है। उसने भी तो नहीं कहा कि वह डाक्टर है। वह जड़ी-बूटी करता है, छुपाता नहीं। तब बताओ, ये क्या गँवार-अपढ़ हैं, जो वहाँ जाते हैं ?"

"तब भी दोष किसका है ? इतने दिनों तक जो...।"

"यही तो मुसीबत है। किसका दोष है और किसका नहीं, इसका फैसला कौन करेगा ? सरकार बदलने से क्या होगा ? वह सरकार तो रही नही। पर राजाबाबू, शशीबाबू या लालमोहन बाबू की शक्ति कम हो गयी है क्या ?"

"वह दबदबा तो नहीं रहा।"

"समय आने पर पता चलेगा।"

"जो बात हुई है, जानते हो ? तुम जितना भी कहो, भाई—पाँच लोग आम खाते हैं, पिचानवें गुठली चाटते हैं। यह स्थिति अभी नहीं बदली।"

"तुम कहते भी हो कि यह वर्गों में बँटे समाज का अभिशाप है।"

"ठीक है, अभिशाप मिटे कैसे ?"

"वर्ग-संघर्ष तेज़ हो तब।"

"यह करेगा कौन ?"

"ये ही करेंगे।"

"हाँ ! क़ानून-भंग, क़ानून-भंग का शोर होने पर पुलिस आकर पीटेगी। तेरे मुँह में यह वर्ग-संघर्ष की इतनी बातें क्यों है, रे लड़के ? तुमने तो सभी आन्दोलनों की रीढ़ तोड़ दी है, नाश कर दिया है। अगर तू इतना ही जानकार है तो एक के बाद एक जाली समितियाँ कैसे यहाँ आकर झंडा गाड़ लेतीं ?"

"तुम चाहते क्या हो और करते क्या हो, कुछ समझ में नहीं आता। राजनीति भी नहीं करते तुम।"

"भाड़ में जाये राजनीति ! पेट में भात नहीं, सिर पर छाता नहीं। यही देख-देख कर ज़िंदगी बीत गयी। अब राजनीति करता है ?"

मणि ने उड़द फैलाते हुए 'छाता' शब्द सुन लिया। सुनकर धीरे से हँसा, बोला, "ख़रीदूंगा, एक छाता ज़रूर ख़रीदूंगा। लड़कों ने कहा है,

महीना मिलने पर खरीद देंगे ।"

मातंग बोला, "अब तू काम करने देगा या नहीं ?"

"क्या कर रहे हो ?"

"पतंगा गाँव के कुएँ की बाबत लिख रहा हूँ । बड़ी गड़बड़ हो गयी है वहाँ । जल तो जीवन होता है । वही जल मदनचंद किसी को नहीं लेने देता ।"

"चलो, देखते हैं ज़रा ।"

"तुम सब तो यह इस तरफ़ देखते ही नहीं ।"

"देखूँगा, कहा तो ।"

"प्रभंजन के पास जाऊँ ?"

"उसके पास क्यों ?"

"मुझे एक रोगी देखना है । उसके पास होकर फिर तुम्हारे पास आऊँगा ।"

"ये लोग आने में इतनी देरी क्यों लगा रहे हैं ?"

"रुको ज़रा ! झगड़ा क्या है, जरा मैं भी सुनूँ ।"

मातंग और अशोक उठ खड़े हुए । मुंशीराम और प्रहलाद दोनों राजाबाबू के 'माहिन्दार' मुर्गे हैं । प्रहलाद ने शाम से ही थोड़ी दारू पी रखी है । क़रीब आठ बरस पहले उसके नाम ज़मीन की गयी थी । राजाबाबू ने वह ज़मीन वापस ले ली थी, कुछ रुपयों के बदले में कोर्ट में। ज़मीन का मालिक प्रहलाद है, पर वास्तव में राजाबाबू हैं ।

यह कष्ट प्रहलाद के मन में हमेशा से रहा है । सुबह उठकर भूत की तरह खटना शुरू करता है । शाम को चार बजे उसे छुट्टी मिलती है। तब वह नहाता है, भात खाता है । हाथों में पैसा होने पर कभी-कभी वह ताड़ीख़ाने जाता है। वहाँ से अपने ही दुख रोता-रोता घर लौटता है ।

प्रहलाद से कई बार कहा है उसने कि "तू राजाबाड़ी में दिन-भर खटता है । तेरी बीवी-बच्चे लकड़ियाँ बटोर कर बेचते हैं, पेट पालते हैं । तुझे दो पैसे मिलते हैं तो ताड़ी क्यों पीता है ?"

"क्यों न पीऊँ ? मेरे घर के रास्ते में ताड़ीखाना और भट्टी चलाने

के लिए सरकार लाइसेंस देती है मैं क्यों न पीऊँ ? पैसे वहाँ नहीं देने के लिए हैं क्या ?"

"यह क्या जवाब हुआ ?"

"मातंग बाबू !"

"दुर ! 'बाबू' मत कहा कर ।"

"ठीक है। मातंग दादा। शहर में इतने शराबख़ाने देखे हैं ?"

"मेरे क़रीब मत आ ।"

"देखे हैं ?"

"नहीं। तू ज़रा दूर ही रह ।"

"मैं हंड़ा बनाता हूँ, महुआ चुवाता हूँ। उसमें क्या ग़लती करता हूँ ?"

"कुछ नहीं। बोल, बोलता जा ।"

"ख़ू—ब दोष है। तभी तो सरकार ने गली-कूचों में भट्टी लगाने का लाइसेंस दिया है। कागज़-कारख़ाने में काम करो, तेल-कारख़ाने में काम करो, राजाबाबू के घर में काम करो, लेकिन पैसा शराबखाने में दिये जाओ ।"

"वहीं पीता है ?"

"वहीं। पीता हूँ दुखी मन से। मुझे बड़ा दुख है रे ! मेरे नाम पर ज़मीन है। उस पर मेहनत करता हूँ, पर धान देता हूँ राजाबाबू की कोठारी में ।"

ऐसा है प्रहलाद। प्रहलाद और उसके जैसे अगर एक साथ अपनी ज़मीनों का क़ब्ज़ा माँगें, कुछ करने का साहस करें, तभी कुछ किया जा सकता। अशोक का मत यही है।

प्रहलाद कहता है, "अगर तुम्हें पता है कि हम जैसों में साहस नहीं है तो हममें साहस भरना दूसरों का काम है ।"

मातंग कहता है, "इनमें साहस का न होना स्वाभाविक है। ये जानते हैं कि इनके पीछे कोई नहीं खड़ा है ।"

अशोक को लगा जैसे मातंग उसे ही दोषी ठहरा रहा है। जैसे कह रहा हो कि 'असंगठित होने के कारण ये कितने दुखी हैं, देख ले। ताक़त

वाले राजाबाबू और उनके परिवार वालों को इतनी ज़मीन की ज़रूरत है क्या ? फिर भी इतनी जमीन कैसे बटोर ली है ? इन बेचारों के पास कुछ नहीं है। उनका दिमाग़ इसी वजह से इतना चढ़ा रहता है। इन पर जो इतने अत्याचार हुए हैं, उसका बदला ले सकते हो तो तुम्हारे मुँह से हम वर्ग-संघर्ष की बात सुन सकते हैं।"

अशोक को लगा कि मातंग दादा यही कहना चाहते हैं। उसे पता है कि मातंग दादा 'वर्ग-संघर्ष' या 'वर्ग-चेतना' जैसे शब्द सुनना पसंद नहीं करते।

अशोक कभी-कभी अपने-आपको असहाय महसूस करता है। मातंग दादा खरे आदमी हैं। पर वह सच को क्यों नहीं देख पाते ? मातंग दादा को यह सब ठीक से समझाना होगा।

उपेक्षित जंगल-महल, उपेक्षित अंचल। यहाँ आदिवासी ज़्यादा हैं। इस इलाक़े में काफ़ी दिनों तक राजाबाबू के दल की राजनीतिक प्रभुता रही है। कागज़ और तेल के कारख़ाने, जंगल-कटाई, ठेकेदारी—इन सारे धंधों में कुछ व्यापारी और धनी भूमिपति घुसे हुए हैं। हर तरफ़ से प्रतिक्रियावादी राजनीति का आधिपत्य है।

ऐसी राजनीति जहाँ होती है, जहाँ कुछ बेकार धनी और अनेकानेक नंगे ग़रीब रहते हैं, वहाँ तमाम अमला और सरकारी तंत्र उन्हीं धनियों का स्वार्थ देखता है।

ऐसी ही पृष्ठभूमि में आज स्वाधीन जंगल-खंड का आंदोलन शुरू हुआ है। हाँ, समाज के बेगार खटते मज़दूरों, ग़रीबों के मन में इस आंदोलन ने नयी आशा की किरणें बिखेरी हैं।

ऐसे ही चक्रव्यूह में फँसे हैं मातंग दादा। 'हम सरकार में शामिल हुए। अब जो नक़्शा सामने है, उसके हिसाब से हम सच्चे हैं, हम लड़ाकू हैं, हम निर्भीक हैं'—इस बात को बताया कैसे जाये ?

उसी पुरानी घुन-लगी अफ़सरशाही से काम चलाना पड़ता है। नेता कुछ और समझते हैं। हमें कुछ और ही लगता है। हम एक दूसरी तसवीर देखते हैं। दुर्दशा इतनी ज़्यादा है कि कुछ भी करो, सागर में बूंद के समान हो जाता है। तब भी तुम्हारे ऊपर हमें बहुत भरोसा है।

आज मातंग के जोर देने पर अशोक, मणि के घर आया है। मातंग हर समय मणि वगैरह का उपकार नहीं कर सकता है। पर वे उसे अपना समझ कर उस पर विश्वास करते हैं।

झगड़े की बात सुनकर अशोक व मातंग आगे बढ़े। मणि का बेटा सोमराई और राजाबाबू के माहिन्दार प्रहलाद और मुंशीराम तीनों लड़ रहे हैं? नहीं, प्रहलाद और मुंशीराम चीख रहे हैं। सोमराई उनसे भी तेज चिल्लाकर उन्हें रोकने की चेष्टा कर रहा है।

"क्या हुआ ?"

मातंग की आवाज़ पर वे चौंक उठे और रुक गये। फिर प्रहलाद नशे में लड़खड़ाती ज़ुबान से बोला, "क्या नहीं हुआ ? मुसीबत में फँसे हुए हैं।"

"कैसी मुसीबत ?"

"चरन बाबू की पत्नी पर किसी ने जादू-मंतर कर दिया।"

"क्या कर दिया है ?"

"डाइन—जादू।"

मातंग का मुंह क्रोध से लाल हो गया। बोला, "किसने कहा ?"

"राजाबाबू, उसके चाचा और भाई ने।"

"उन्होंने कहा है ? तूने सुना है अपने कानों से ?"

"हाँ, सुना है।"

मातंग आगे बढ़ा और उसने प्रहलाद के गालों पर एक चाँटा रसीद किया। बोला, "वे पढ़े-लिखे लोग हैं, इसलिए डाइन का प्रचार कर रहे हैं। तू नशे में है। कान कहने पर धान सुनता रहा है।"

"मारा...मुझे मारा ?"

"मारूँगा नहीं ?"

मुंशीराम बोला, "उन्होंने आइन-क़ानून की बात की थी, इसने डाइन सुन लिया ! कितना समझा रहा हूँ, पर यह चुप ही नहीं होता।"

"अरे नहीं, डाइन ही कहा था।"

"ठीक ही बोला है। पर अब तू घर जा। मुंशी, तू चला जा बाबू के घर। सोमराई, तुम इनके बीच क्या करने आये हो ? तेरी मति मारी गयी है क्या ?"

"मुझे दोनों ने पकड़ लिया था।"

"नहीं, ये अच्छी बातें नहीं हैं। यह डाइन-फाइन की बात भी ग़लत है। डाइन, देवता और मनसा वग़ैरह के डर से ही सारा खून-ख़राबा होता है।"

अशोक ने पूछा, "डाइन!"

"हाँ, हाँ, सुना नहीं? इन्हीं सब चीज़ों पर विश्वास करके सर्वनाश होता है।"

"यह सब कुसंस्कार है।"

"जितना संस्कार नहीं है, उससे ज़्यादा झींकना है। अपनी जाति पर भी बड़ा गुस्सा आता है मुझे। 'रूपान्तर' में डाइन के विषय पर बड़ी रसीली कहानी छपी थी, पर किसी ने विरोध तक नहीं किया। आदिवासी के नाम पर नंगी लड़की की तसवीर या फिर डाइन या गाँजाख़ोरी का प्रचार होता है।"

"ठीक कहते हो।"

"मेरे कहने पर बात समझ में आयी...क्यों? आदिवासियों को लेकर इसी तरह का प्रचार होता है। उससे शर्म नहीं आती क्या? विरोध करने का मन नहीं होता?"

"जाने दो। दारू पीकर पता नहीं क्या बक रहा था!"

"नहीं, मैं कुछ ठीक से नहीं समझ पाता हूँ। तुम भी खूब करते हो वर्ग-संघर्ष की बातें! देखा यह वर्गों का धंधा!"

"क्या देखूँ?"

"तीनों बेवक़ूफ़ हैं। सोमराई को एक धूर ज़मीन मिली है। इसीलिए मुंशीराम और प्रहलाद क्रोधित हैं। एक को ज़मीन नहीं मिली, दूसरे की ज़मीन उसके अख़्तियार में नहीं है। प्रहलाद और मुंशीराम का असली दुश्मन है राजाबाबू। पर उस पागल ने यह सोच लिया है कि सोमराई उनका शत्रु है। यही हमारा समाज है, हमारे समाज के लोग हैं। इनका भला करने पर काफ़ी कष्ट झेलना पड़ता है।"

"तुम मुझसे ज़्यादा अच्छी तरह समझते हो।"

"डाइन का हंगामा अच्छा नहीं है।"

"अरे, वह कुछ भी नहीं है।"

"तुम्हारे समझने के लिए अभी बहुत-कुछ बाक़ी है। मेरा विश्वास है कि प्रहलाद ने ठीक ही सुना है।"

"वह कैसे ?"

"देख लेना।"

मातंग भवें चढ़ाकर पता नहीं क्या सोचते हुए चल रहा था। दोनों साइकिलें पकड़े पैदल चल रहे थे। रास्ते पर उन्हें नज़र आये लोधा पुरुष और औरतें। वे लकड़ी वेचकर लौट रहे थे। अशोक कह रहा था—

"करुण हाथों में थकी कलम,
काँपती है लाज से, शर्म से,
स्वाधीन देश की दागी लोधा जाति,
चिर दिन असहाय !

× × ×

चोरी न करके भी,
पहचान है चोर की,
आजन्म सिर्फ़ यही विचार—
पैदा होना अपराध है,
दरिद्र लोधा के घर।"

"सच मातंग दादा, बहुत सही लिखा है भवतोष ने। लोधा होकर जन्मना ही अपराध है।"

"हाँ, अच्छी कविता है।"

"ऐसी कविताएँ बड़ी अच्छी होती हैं। समझ में आती हैं।"

"समझ में तो आती हैं, भाई ! पर लोधा लोगों को देखो, दाग कर अलग रख छोड़ा है। आठवीं-नवीं क्लास पढ़े लड़के क्या यहाँ नहीं हैं ? उन्हें अगर चौथी के बाद कोई काम दे दें तो...?"

"तुम्हारा कहना ठीक है।"

"या जंगल में चौकीदार का काम दे दें। वे जंगल के चप्पे-चप्पे को जानते हैं।"

"उन्हें भी तो खुद आगे आना चाहिए।"

"वह कैसे भला? उनके साथ कोई है जिसके जोर पर वे आगे आयें? मुझे तो कई बार ऐसा लगता है कि आदिवासियों को अजायबघर की चीजों की तरह नहीं रखना चाहिए। सहज भाव से रहने देना चाहिए।"

"जाति और वर्ग!"

"फिर वही शब्द। अरे बाबा, ये बातें तो तपनबाबू के लेक्चर में हमेशा से सुनता आ रहा हूँ। पर यदि सभी को बराबर कर दोगे तो सभी को समान प्रतियोगिता में भाग लेना पड़ेगा।"

"हाँ।"

"तब ये बेचारे लोधा, बिरहड़ और पहाड़िया क्या करेंगे यह तो आदिवासियों में भी पिछड़े हुए हैं।"

"हाँ, भारी गोलमाल है यह सब।"

मातंग ने अशोक की पीठ पर एक धौल जमायी और बोला, "बड़ी गड़बड़ी लगती है न तुझे रे! पर तुझे समझाऊँ कैसे?"

अशोक ने सिर हिलाकर सहमति दी। वह बड़ा ही अभिभूत हो उठा। पुरानी बातें याद आती हैं। बहुत दिन हो गये! हाँ, दिन तो बीतेंगे ही। उसकी उम्र ही चाईस साल की हो गयी है। अशोक तब बेलबनी आदिवासी बोडिंग स्कूल में पढ़ता था। मातंग तब नौकरी करता था और लड़के को देखने बोडिंग में जाता था। एक बार फुटबाल टीम के निर्धारित पैंट के लिए अशोक मुँह लटकाये बैठा था। मातंग ने उसके हाथ में पैंट पकड़ाते हुए कहा था, "जा, मैच खेल। यह ले पैंट।"

इतने दिनों के बाद आज मातंग ने फिर कंधे पर, पीठ पर हाथ रखा है।

मातंग बोला, "मुझे भी यह बड़ा गोलमाल लगता है।"

अचानक बड़ी कड़ी-सी बदबू नाकों में आयी।

मातंग ने कहा, "कागज-कारखाने की बदबू है।"

"हवा को जहर बना देती है। पहले इतने मच्छर भी नहीं थे, इतनी मक्खियाँ भी नहीं थीं।"

"पेड़ काट कर रेगिस्तान बना दिया सारा इलाका। पेड़ देवतुल्य होते हैं रे, अशोक! मिट्टी को हरा-भरा रखेंगे, तुम्हें फल-फूल, लकड़ी देकर

बचायेंगे। हवा में से जहर खींचेंगे। जंगल जब तक थे, इतनी भूख, इतनी भुखमरी नहीं थी। गरीबी तब भी थी। वन-रक्षा, पशु-रक्षा सम्बन्धी नियम नहीं जानते थे। इतनी पहरेदारी भी नहीं थी। पर जंगलों में जानवर और पक्षी भरे पड़े थे।"

"स्वाधीनता के बाद बदलेगा ही।"

"हां, भाई!"

"क्या बदबू है!"

"बदबू में ज़हर नहीं होता क्या ?"

"जरूर होता है। पेड़ कट रहे हैं। हां, नये पेड़ लगाये जायेंगे।"

मातंग कुछ देर चुप रहा। फिर बोला, "क्या कहूँ...पेड़......शाल काटते हैं। अरे शाल की जगह पर तो आदमियों के दिल भी गड़े हैं। बिलू बाबू की बॉब-कट छमकछल्लो बीबी की तरह यूक्लिप्टस शाल की जगह नहीं ले पाया।"

"तुम भी प्रभंजन दादा की तरह बातें करते हो।"

"नहीं रे, अपने मन की बात कहता हूँ।"

"तुम क्या समय की गति को नहीं मानते ?"

"हां, समय की गति भी है। इसकी भी थोड़ी ज़रूरत है! हां, यूक्लिप्टस होने से सरकार को लाभ है। आदमियों के होने-न होने से सरकार को क्या? शालवन को बचाकर रखने पर आदमियों का दिल जीता जा सकता है। शाल को किसी भी तरह से बचाने का दायित्व ग्राम-देवता का होता है।"

"देवी-देवता लेकर हम क्या करेंगे?"

"तो क्या यह समझूँ कि गड़ाम देवता को नहीं मानता तू, अशोक?"

अशोक ने सिर झुकाया व "कहा, मैं सबको मानता हूँ। क्यों न मानूं? हम अपने देवी-देवता तुम्हारे हवाले कर सकते हैं, पर तुम हमें बदले में क्या दोगे? तेरे पास तो कुछ है नहीं। मैं इतनी-सी उम्र में सब-कुछ नहीं गँवा सकता।"

दोनों चुपचाप चलते रहे। दुर्गंधमयी हवा। मातंग बोला, "डाइन वगैरह भी ऐसा ही ज़हर छोड़ती हैं।"

"अब भी वही बातें सोच रहे हो ?"

"सोचूँ नहीं ? अचानक किसी ज़रूरत पर ही कोई इस तरह का धुआँ उठाता है !"

"ज़रूरत पर ?"

"कल आना। बताऊँगा।"

3

'मोर लाइट या अधिक प्रकाश' संस्था का ऑफ़िस शहर में एक बड़ी बिल्डिंग के एक पूरे तल्ले में है। पश्चिम बंगाल के सबसे अशांत क्षेत्र में 'अधिक प्रकाश' के कई ऑफ़िस हैं। वे गाँव-गाँव खोजबीन का काम करते हैं। जैसे—पहाड़िया या आदिवासी नहाते क्यों नहीं ?

साधारण लोगों का जवाब होगा—"पानी नहीं है, इसलिए।" लेकिन यह संस्था इस सामान्य प्रश्न को लेकर प्रति-व्यक्ति हज़ार रुपये देकर शोध करवाती है। शोधकर्ता लड़के-लड़कियाँ इस कार्य के लिए गाँव-गाँव मे नियुक्त हैं।

इस संस्था का सारा ख़र्च विदेशों से आता है। उन देशों की निजी समस्याएँ शायद पूर्ण रूप से ख़त्म हो गयी हैं। इसीलिए वे भारत की आदिवासी, जंगली और पहाड़ी जगहों के समस्या-समाधान हेतु पूर्ण रूप से तत्पर हैं।

शहर की 'आदिवासी बंधु' संस्था में भी सभी घुसे हुए हैं। जिन जगहों पर 'अधिक प्रकाश' नहीं पहुँच पाया वहाँ 'आदिवासी बंधु' पहुँच गये हैं। इनके शोध का विषय है—'आदिवासियों का खाद्याभ्यास।'

इसके अलावा 'गोंसाई समाज', 'गरीबों की रोटी', 'ग़रीब जाति एकता समिति' संस्थाएँ भी हैं। यह तीन संस्थाएँ कागज़-कलम से ही उन्नयन का कार्य करती हैं। 'अधिक प्रकाश' संस्था में स्थानीय लेखक—

विनय का प्रवेश हुआ है। अशोक उस दिन सवेरे मातंग के घर पहुँचा तो देखा, विनय भी वहाँ बैठा है। साथ में दीपक है। दीपक राजाबाबू के चाचा विश्वनाथ का लड़का है। दीपक के दो भाई खीरोद और चरन काम करते हैं। दीपक और उसकी दो बहनें माधवी और शेफाली अभी भी छात्र हैं। दीपक बड़ा मस्त और चंचल लड़का है। तीनों भाई-बहन गीत अच्छा गाते हैं। शहर के बाहर के कई सांस्कृतिक अनुष्ठानों में भी वे गये हैं। दीपक अशोक को बड़ी ही श्रद्धा से देखता है।

विनय के साथ दीपक को देख अशोक ज़रा चौंका। 'अधिक प्रकाश' या 'गोंसाई समिति' या ऐसी दूसरी संस्थाएँ दो-नम्बरी और जाली हैं, दीपक हमेशा कहता रहा है। 'आदिवासी बंधु' के ऑफ़िस के बोर्ड पर जिन्होंने 'आदिवासी शत्रु' लिख दिया था, उनमें दीपक भी एक था।

मातंग बोला, "उस कांड की कुछ ख़बर है ?"

"क्या ?"

"अरे बाबा ! उस दिन मैंने कहा नहीं था...! जाने दो। विनय, बता दो।"

विनय के चेहरे पर एक हँसी हमेशा चिपकी रहती है। लेकिन विनय भी अब चुप था। दीपक की आँखें-मुंह हमेशा की तरह खुले थे।

"क्यों क्या हुआ, विनय दादा ?"

"जाने दो। तुम तो मेरे सारे कामों के पीछे षड्यंत्र देखते हो।"

"कहिए न।"

मातंग "बोला, मैं बताता हूँ। दीपक की भाभी, चरन की पत्नी बच्चा होने के बाद से ही बीमार है। दीपक कहता है कि उसकी माँ ने कहा है कि यह किसी डाइन का काम है। कौन डाइन है, यह माधवी और शेफाली बतायेंगी। विनय कहता है कि इसी मुद्दे पर वे रिसर्च करेंगे। मैं यदि इनकी सहायता करूँ तो मुझे भी रुपये देंगे।"

विनय बोला, "यह मैंने नहीं कहा। आपके पास ज्ञान बहुत है। आपके ज्ञान की क़ीमत देना चाहता हूँ। आप तो बहुत घूमते हैं, गाँव-गाँव जाते हैं।"

"कितने पैसे देगा, रे ? मातंग ने इतने दिन सरकार की नौकरी की है,

अब पेंशन पाता है। किसी तरह से पाँच कट्टे धान का खेत कर लिया है। लड़के की नौकरी लगने पर घर की छत-टीन डलवा दी है। जो नहीं कर सकता उसे नहीं करता हूँ। मैंने कोई डाइन-भूतिन नहीं देखी कभी।"

दीपक बोला, "घर पर सभी कहते हैं, डाइन की बात।"

"क्या किया है डाइन ने ? तुम्हारी भाभी को मार डाला है या और कुछ ?"

दीपक बोला, "नहीं ! भाभी के भाई आकर उन्हें कलकत्ता ले गये हैं।"

"कैसी हैं ?"

"अच्छी हैं।"

"रोग हुआ। डॉक्टर ठीक कर रहा है। और तुम उसके पीछे डाइन ढूंढ़ रहे हो। यह क्या अच्छी बात है ?"

दीपक कुछ कहना चाहता था, पर चुप रहा। "हाँ, डाइन देखी है ! कैसी होती है ? पाथरकुड़ा गाँव की मति लोहारनी को डाइन बताते थे। क्यों ? गायों में बीमारी फैल रही थी। घर-घर गायें मर रही थीं। तब मैं नौकरी करता था। मति को बचाया। सरकारी वेटिनरी डॉक्टर लाया। इंजेक्शन दिलवाया। गायें मरनी बन्द हो गयीं।"

"अच्छा, यह बात !" विनय बोला।

"हाँ, यही बात है। जहाँ डॉक्टर नहीं, अस्पताल नहीं, बीमारी से लोग मरते हैं वहाँ बीमारी ही डाइन होती हैं। एक या दो लोग ही इसी तरह डाइन की ख़बर फैलाते हैं। गाँव के अशिक्षित और गँवारों को डाइन मारती है। पर यह क्या सुन रहा हूँ कि समाज के शिक्षित और सभ्य तथा धनी लोगों ने डाइन देखी है ! विश्वास ही नहीं होता।"

विनय बोला, "बलाई दादा बोलते हैं कि डाइन है।"

"नहीं ! बलाई सबसे मिल-जुल कर रहता है। हमारी भाषा भी बोलता है। तभी उसे लोग संयाल भी कहते हैं। पर वह क्या जाने ? दारू पीकर कहता है कि दीपक का माहिन्दार प्रहलाद बड़ा दुष्ट है। बलाई को तो शाम को विलायती चाहिए। पैसे कौन देता है ? ऐसे लोगों का कोई

भरोसा है ? और विनय, यहाँ डाइन है कि नहीं, इसे लेकर तुम्हारे विलायती मालिकों को क्यों सरदर्द हो रहा है ?"

"यह क्या ज्ञान-विज्ञान का क्षेत्र नहीं है ?"

"डाइन में ज्ञान-विज्ञान क्या है, बेटा ? तुम लोग ही प्रचार करते हो कि हम जंगली है, डाइन में विश्वास करते हैं। हमारा समाज आगे बढ़ने को आतुर है, यह बात तुम कभी नहीं लिखते। जाओ-जाओ, अपना काम देखो।"

अशोक बोला, "दीपक ! यह क्या हुआ ?"

"मैं क्या करूँ ?"

"कहना यही कि ये सारी बातें यहाँ नहीं होतीं।"

विनय और दीपक चले गये। गुस्से से जलते मातंग ने बीड़ी सुलगा ली। कई कश खींचे। फिर बोला, "किसी दिन ग़लती से भी मत कहना कि प्रहलाद ने क्या कहा था। इसमें कोई पेंच जरूर है।"

"बलाई बाबू का नाम ले रहा था।"

"वह शख़्स दिन में हमारा दोस्त है, शाम ढलते ही राजाबाबू के घर जा पहुँचता है।"

"वह राजनीतिक व्यक्ति है।"

"इसीलिए वह क्या दुष्ट है ?"

"अब यह सब कहने से क्या कोई फ़ायदा है ? तुम्हारी राजनीति में भी भ्रष्ट लोग हैं। सब अटल बाबू नहीं हैं।"

"क्या करोगे ?"

"देखता हूँ। ज़रा सोमराई से पूछ लूँ।"

शहर में ही सोमराई से मुलाक़ात हुई। उसके साथ उसकी विवाहित बहन रजनी भी थी। रजनी के बच्चे के लिए वे दवाई लेने आये थे। एक बच्चे की माँ होकर भी रजनी की चंचलता नहीं गयी है।

"बच्चे की तबीयत ख़राब है न, इसीलिए माँ के पास आयी हूँ।" यह बात उसने प्राय: नाचते हुए कही।

"तू तो खल्लीहाट में टिकती ही नहीं। हमेशा यहीं देखता हूँ।"

रजनी अब खुलकर हँसी। बोली, "भैया की बहू नहीं आयी अभी। जब

तक इसकी शादी नहीं होती, आती रहूँगी। तुम्हारे बहनोई से कह रखा है। माँ बूढ़ी हो गयी है। फिर कानों से सुनायी भी नहीं देता। फिर अकेली भी है।"

सोमराई बोला, "नहीं रह सकती अकेले तो हम संभाल लेंगे। पर जिस तरह तू आ रही है, तुझे भगा दूंगा।"

"मुझे! देखूं तो ज़रा?"

अशोक बोला, "दवाई ख़रीद कर घर जा। सोमराई के साथ बातें करनी हैं।"

"नहीं, इतने लम्बे रास्ते में अकेली नहीं जाऊँगी। तुम बातें कर लो। मैं बाज़ार करती हूँ।"

"क्या ख़रीदेगी?"

"आलू और मिर्ची। दादा मछली लाये हैं।"

रजनी चली गयी। मातंग ने सारी कथा सुनायी। सोमराई कुछ देर चुप रहा।

फिर बोला, "राजाबाबू भन-भन कर रहे हैं। पता नहीं, क्या हो रहा है? उनकी चौहद्दी पर ही सरकारी कुआँ है। कभी माँ जाती है पानी लाने, कभी मैं। हमें देखते ही फटाफट खिड़कियाँ बन्द कर देते हैं।"

"समझा।"

"अब देख, हम ज़्यादा तीन-पांच नहीं करते। भूत की तरह खटते हैं सारे दिन। बीच-बीच में खेतों पर काम करते हैं। एक चीज़ देखी है। विश्वनाथ बाबू या तारानाथ बाबू, जिसे भी 'नमस्कार बाबू' कहता हूँ, मुँह घुमाकर चला जाता है।"

"गांव तो राजाबाबू की कॉलोनी है। सब उसके क़ब्ज़े में है। ज़रा सावधान रहना। प्रहलाद व मुंशीराम से बचकर रहना।"

"क्यों?"

"विपत्ति आ सकती है।"

"हम पर! राजाबाबू के ज़रिए? वे तो राजा हैं। हम तो च्यूंटी बराबर भी नहीं हैं उनके सामने। हम पर क्या विपत्ति आयेगी, बताओ तो? ज़मीन को लेकर...?"

"ज़मीन तो तेरी जान है। क्यों रे ?"

"हाँ दादा ! काम पर आते-जाते भी ज़मीन को एक नज़र देख लेता हूँ।"

"हाँ वही तो। पहले नहीं थी तेरे पास।"

"हाँ, तभी तो तारानाथ बाबू कुपित हैं। मुंशीराम को नहीं मिली ज़मीन। कहता है—सरकार तो तेल चुपड़े सिर पर तेल डालती है, ग़रीबों को नहीं देखती।"

"ठीक ही तो कहता है। राजाबाबू की रैयत होकर भी ग़रीबों को ज़मीन नहीं मिली, क्यों ?"

"अब कोई क्या कहे ? अच्छा दादा, अभी भी तो कुछ ज़मीन बची है, किसे मिलेगी ?"

"कौन जाने ? सभी ने तो अर्ज़ी दी ही हैं। किसे मिलेगी, कौन जाने ? क्यों ?...? कोई है क्या ?"

"हैं तो बहुत। मुझे देखकर कुछ साहस भी हुआ है लोगों को। छुपकर कहा भी है। पर पंचायत में खुलेआम आना होगा। तभी सब गोलमाल होगा।"

"देखा जायेगा। हम तो हैं।"

"सब कहते हैं कि पार्टी के आदमियों को छोड़ किसी को ज़मीन नहीं मिलेगी। अशोक था, इसीलिए तुम्हें मिली।"

अशोक चुप रहा। फिर बोला, "जब नियम है कि भूमिहीनों को ज़मीन मिलेगी तो अर्जियाँ दें। फिर देखा जायेगा।"

मातंग ने सिर हिलाया, "एक धूर ज़मीन। तब भी गड़बड़ी मचनी ज़रूरी है। सब-कुछ राजाबाबू के पास चला जाता है। सूदख़ोरी करता है न !"

सोमराई बोला, "डाइन कहाँ है ? होती तो मुझे तो पता चलता।"

सोमराई इतना कह कर चला गया। लेकिन राजाबाबू के घर में धीमी आवाज़ में 'डाइन-डाइन' शब्द सुना जाता है। चरन अपराधी की तरह बैठा रहता है। डाइन के बाण से उसकी पत्नी बीमार है। यह निर्णय

राइमणि ने किया और इस बात को ढो रहे हैं राजाबाबू !

इसी तरह यह सारा गोरख-धंधा किसी परिणाम की तरफ़ तो जा ही रहा था। पर बीच में ही उसका साला आया और 'डाइन' के चक्कर को ताक पर रखकर वहन का इलाज करवाने लेकर चला गया था। चरन की पत्नी धीरे-धीरे ठीक हो रही थी। यह बात ठीक नहीं हुई ।

राजाबाबू बोले, "तुम चिन्ता क्यों करते हो ? डाइन है और गाँव में ही है।"

"कैसे पता चले ?"

"इसका क्या ठप्पा लगा होता है ?"

ठप्पा तो नहीं लगा होता। राजाबाड़ी के लोग डाइन के आतंक से डरे रहते हैं। 'डाइन' का यह हंगामा उन्हीं की पैदाइश है, यह बात भी वे भूल गये हैं।

इसी बीच मुंशीराम आया। बोला, "इस बार मैं भी अर्ज़ी दूंगा, बाबू !"

"किस बात की अर्ज़ी ?"

"ज़मीन की।"

"ठीक है ! तुम कितने आदमी हो ?"

मुंशीराम सत्रह लोगों के नाम गिना गया। गोकुल, फनी, मतिराम, कैता, बेलुनचन्द—बहुत-से लोग हैं। राजाबाबू घबरा गये। सब उन्हीं की ज़मीन पर खटते हैं, ऐसा तो नहीं है। जो उनके खेतों पर हैं वे वहीं खटते रहेंगे, यह वे जानते हैं। क्योंकि जितनी ज़मीन मिलेगी उससे पेट नहीं भरेगा। इस कारण घबराने की कोई बात नहीं है। फिर भी अर्ज़ी देना और ज़मीन का मिलना, दोनों में बड़ा अन्तर है—यह भी वे जानते हैं।

तब भी उन्हें लगता है कि वे घबरा रहे हैं। भूमिहीनों को ज़मीन चाहिए। अगर सभी को ज़मीन मिल गयी तो क्या कुदाल उन्हें चलानी होगी ?

अभी वक़्त है। डाइन की पहचान ज़रूरी है। गँवार, अशिक्षित, अर्ध-शिक्षित लोगों को डराना ज़रूरी है।

इन सत्रह लोगों का नाम और साथ में 'डाइन' शब्द से राजाबाड़ी

गूँजता रहता है। दीपक की दोनों बहनों, माधवी तथा शेफाली, ने बुख़ार में सोये-सोये ही ये नाम सुने हैं। भीषण ज्वर चला है घर-घर में। सात-आठ दिन खूब तेज़, फिर कुछ कम। लोग उलट गये हैं। बीमारी का नियम भी है।

माधवी बुख़ार में ही चिल्लायी, "राजा दादा ठीक कहते हैं।"

"क्या ?"

"हमें डाइन ने कुछ कर दिया है।"

"किसने ?"

"लखिन्दर, उसकी पत्नी गोपाली, मनी, कैता, क्षेम दास, बेलूनचंद—सब का नाम कागज़ पर लिख देती हूँ।" माधवी लाल आँखों से उठ बैठी और कागज़ पर नाम लिखने लगी। शेफाली यह सब सुन कर बिछौने पर इधर-उधर करवटें बदलती रही।।

इस घटना का कोई गवाह नहीं था।

लेकिन सवेरे राजाबाबू की पुकार पर सब आये। राजाबाबू बड़े गम्भीर स्वर में बोले, "गाँव के पंच, आप मेरी बात सुनें!"

सब एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे।

"इस गाँव में कुछ लोग जादू-टोना कर रहे हैं। कल माधवी और शेफाली, दोनों अविवाहित लड़कियों ने तेज़ बुख़ार में स्पष्ट बताया है कि कौन-कौन डाइन हैं।"

"डाइन ? राजापुर में ?"

"हाँ, डाइन ! सुनो......!"

सभी नामों को ज़ोर-ज़ोर से पढ़ा गया।

"जिसे-जिसे काम पर जाना हो, काम पर जायें। लेकिन डाइनों को यहाँ मैं रहने नहीं दूँगा। तुम भी नहीं रहने दोगे, यह मैं जानता हूँ। आज रात को बैठक होगी।"

सोमराई चिल्लाया, "यह सब चाल है! जिसने ज़मीन के लिए अर्ज़ी दी, उनके नामों में से चार लोगों का नाम निकाल लिया और हम माँ-बेटे, लखिन्दर और उसकी पत्नी का नाम घुसा दिया! क्या समझे आप ? आप जिस पर ख़फ़ा हैं, वही डाइन है! कौन डाइन...कैसी डाइन ?"

काफ़ी तर्क-वितर्क शुरू हुआ इसे लेकर। लखिन्दर बोला, "बहुत दिनों से हुकुम सुनता रहा हूँ इनका—रुपये ले ले, ज़मीन दे दे। लड़की को गोद लिया है, इसीलिए मैं ज़हर हो गया हूँ आपकी आँखों में। आज डाइन भी हो गया! हाय रे भाग्य!"

राजाबाबू के पास उसके चाचा-भाई दौड़ कर आये। आकर पास में खड़े हो गये। जनता की छातियाँ काँपती रहीं। वे जानते हैं कि कांग्रेस हो या वाम फ्रंट—सब एक जैसे हैं। वे राजाबाबू की प्रजा के अलावा कुछ नहीं। कभी दिल्ली, कभी कलकत्ता, कभी थाने का डर दिखा कर राजाबाबू ने उन्हें पैरों तले दबाकर रखा है। इस परिवार के लोगों को 'परनाम हो बाबू' कहने में भूल-चूक हो जाये तो शाम को किरासिन मिलना मुश्किल हो जाये।

राजाबाबू ने हाथ उठाया। बोले, "रात को सभा होगी। और ध्यान रहे, यह बात गाँव के बाहर न जाये।"

सारा दिन गाँव धप-धप करता रहा। लोगों के मुँह काले पड़ गये थे। जिसे जहाँ जाना था, चला गया। सोमराई ने रजनी से कहा, "तू घर लौट जा।"

"क्यों...क्यों जाऊँ?"

"दिगम्बर राजाबाबू का आदमी है। पता नहीं क्या सुने, क्या समझे! फिर अशान्ति फैलेगी।"

"कैसी अशान्ति?"

"राजाबाबू इस डाइन वाली बात को लेकर हंगामा करेंगे। इसे लेकर बमचिक भी मचेगी।"

"तुम्हें मार देंगे, दादा?"

"मैं क्या जानूँ?"

"मैं नहीं जाऊँगी।"

सोमराई क्रोधित हुआ। बोला, "तुझे तनिक भी बुद्धि नहीं आयी।" वह गुस्से में ही ऑफिस चला गया। रजनी चावल पकाने चली गयी। गजापुर में दो सरकारी कुएँ हैं। चैत से जेठ तक पहुँचते-पहुँचते उनमें काफ़ी पानी होता है। क्या मीठा पानी है! ऐसा लगता है जैसे मिश्री का घोल पी रहे

हों। मन जुड़ा जाता है।

मणि पानी भर रही है, उंडेल रही है। किसी ने उसका नाम लेकर पुकारा। मणि चौंकी। फिर सिर पर पानी का घड़ा रख कर उसने पलट कर देखा। डर के मारे उसकी आँखें फटी रह गयीं। "राजाबाबू! मुझे मारना नहीं। अशोक था, इसी कारण मुझे ज़मीन मिली। मैंने दोष किया हो, ऐसा नहीं है। तुम्हें देखते ही मेरी छाती धड़क रही है।"

"मणि!"

"रा—जा—बा—बू!"

"आज सभा होगी।"

"रा—जा—बा—बू!"

"तब तुम्हें एक काम करना होगा।"

"कौन-सा काम?"

"तू पूजा-पाठ करती है। धरम-करम में तेरा मन है। तू सभा में कहना, लखिन्दर और गोपाली डाइन हैं। यह अगर तू कह दे तो तुझे कोई भय नहीं रहेगा कभी।"

भूखे-नंगे पूजा-पाठ करने के बाद, भक्ति-लाभ के बाद या तो अद्भुत बेवकूफ़ हो जाते हैं या दुर्दान्त साहसी होकर बग़ैर परिणाम सोचे कुछ भी कर सकते हैं। या फिर वे धर्म-विश्वासी हो जाते हैं।

मणि के सिर में चक्कर-सा आ गया। कुछ देर बाद उसकी समझ में आया कि सामने राजाबाबू खड़े हैं—जिनकी शहर में तीन लाख की कोठी है, गाँव में अपार ज़मीन है, जो चुनावों में बीस-पचीस लाख रुपये फूंक देते हैं।

इनमें इतनी क्षमता थी, फिर भी इन्होंने मणि को रत्ती-भर ज़मीन नहीं दी। सोमराई को काम नहीं दिया। नहीं, आदमी क़तई अच्छा नहीं है। ग़रीबों का पुराना दुश्मन है यह। मणि ने घड़ा लादे सिर हिलाया।

"राजाबाबू! लखिन्दर और गोपाली ने मेरा कुछ नहीं बिगाड़ा है। उन्हें डाइन करार देकर मैं धर्म-च्युत हो जाऊँगी। यह मुझसे नहीं होगा।"

"देखा जायेगा।"

"मुझसे नहीं होगा। कोई डाइन नहीं है। किसी को समय नहीं है

इतना। नमक-तेल के चक्कर में ही दिन-रात गुज़र जाते हैं। राजाबाबू, हम नहीं जानते, जादू-टोना क्या होता है।"

आज की रात्रि-सभा में बहुत ही कम लोग आये थे। बाहर पैट्रोमेक्स जल रहा था। कुरसी पर बैठे विश्वनाथ बाबू बोले, "मणि, लखिन्दर और गोपाली डाइन हैं।"

इसी तरह सभा चलती रही। प्रत्येक सभा में राजाबाबू काले पत्थर के हिंस्र प्रेत जैसे निश्चल बैठे रहते हैं और बीच-बीच में कुछ बोलते रहते थे। इसी तरह प्रेतोत्सव शुरू हुआ। शहर में किसी को पता तक नहीं चला। सभाओं में सारे लोग नहीं आते। कभी दस आ जाते हैं तो कभी बीस। इसी तरह सभा की उपस्थिति चलती है। सारे लोग जान गये कि डाइन-फाइन कोई नहीं। डाइन की ज़रूरत राजाबाड़ी को है। मणि, सोमराई, लखिन्दर और गोपाली को डाइन क़रार दिया गया है, क्योंकि राजा बाबू उन पर क्रुद्ध हैं।

वे यह भी समझ गये कि इन चारों को डाइन क़रार न देने पर भी राजाबाबू उन्हें छोड़ेंगे नहीं। एक भयानक प्रश्न उठ खड़ा हुआ है। उनके मन में विभिन्न विचार उठ रहे हैं। राजाबाबू से जीतेगा कौन ? यह आदमी दिल्ली और कलकत्ता को मुठ्ठी में रखता है। आदिवासी है ? नहीं, राजाबाबू दूसरे समाज का है। अब राजाबाबू चाहते हैं तो डाइन बनेंगे लोग। बनना ज़रूरी है। उन पर राजाबाबू गरम हैं। वे ऐसे भी मरेंगे, वैसे भी।

बाद में जब सारी बातें सभी को पता चलीं तो अशोक बोला, "क्यों, गांववासियों ने ऐसा क्या किया है ?"

उसका उत्तर उसे दो वर्ष बाद ग्रामीण-दरिद्रता की सरकारी रिपोर्ट ने मिला था।

उसमें लिखा था—

"1974 वर्ष की फ़ाइनेंस कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण दरिद्रता में पश्चिमी बंगाल का स्थान दूसरा है। 1971 ई० में यह देखा गया था कि पश्चिम बंगाल के ग्रामीण प्रति व्यक्ति एक महीने में 15 रुपये भी नहीं ख़र्च कर सकते। पश्चिम बंगाल की शहरी ग़रीबी और ग्रामीण

ग़रीबी में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। भारत के किसी अन्य राज्य में यह अन्तर इतना अधिक नहीं है।

"... ...इस भारत में, खाने-पीने के ख़र्च के हिसाब से 1973-74 में 75 प्रतिशत लोग ग़रीब हैं। काफ़ी ग़रीब 67 प्रतिशत और अत्यंत दरिद्र 59 प्रतिशत हैं।"

यह हिसाब 1981 में अशोक के हाथ आया। इस पतली-सी किताब को पढ़ते-पढ़ते अशोक को अनेक 'क्यों' का उत्तर मिल गया। 1979 में राजावाड़ी के लोगों ने यह जानते हुए कि कोई व्यक्ति डाइन नहीं है, राजाबाबू की मर्ज़ी के अनुसार कार्यवाई की थी। क्यों?

क्योंकि वे सब 75 प्रतिशत लोगों में से ही थे। कुछ 67 प्रतिशत में थे और कुछ भूमिहीन मज़दूर 50 प्रतिशत में से थे।

इस भयानक ग़रीबी में और इसी के चलते राजाबाबू से डरते रहने की आदत हो गयी है। इसीलिए वे राजाबाबू की इच्छानुसार काम कर रहे थे।

4

राजापुर के ग्रामवासी धीरे-धीरे इस प्रेतोत्सव में शामिल होते गये। पर किसी ने मुँह नहीं खोला। चैत ख़त्म होते-होते एक दिन सारे गाँव वालों को मुनादी कर के बुलाया गया।

"डाइन-डाकिन की पहचान आज होगी," रिटायर्ड कर्मचारी विश्वनाथ ने घोषणा की।

"मैं पहचान करूँगा," गाँव के एक दरिद्रतम बूढ़े खोदन ने कहा। आकाश की तरफ़ हाथ उठा कर उसने देवी-देवताओं को बुलाया। फिर बैठ गया। डोलना शुरू हो गया।

खोदन पर देवी आ गयी है। अब वह बतायेगा कि कौन डाइन है?

राजाबाबू खुशी से चीखे। खोदन डोलते-डोलते उठ खड़ा हुआ। फिर वहाँ से भागा और अँधेरे में विलीन हो गया। फिर एक नारी-कंठ की चीख। "नहीं! नहीं! नहीं!" खोदन उसी तरह भागता आया। उसके पीछे आयी मणि। रजनी आयी। उसका बच्चा उसकी गोद में था। खोदन, मणि की पूजा की मूर्तियों को तोड़ रहा था। मणि मुँह में कपड़ा ठूँस कर थर-थर काँपती रही। फिर आर्तनाद करती हुई बोली, "ज़मीन तुम ले लो, राजाबाबू! मूर्ति मत तोड़ो! गोकुल देख...,अरे उद्धव, तू यह सब क्या देख रहा है? मेरी मूर्तियाँ तोड़ दीं खोदन ने!"

खोदन मूर्तियाँ तोड़ता रहा। 'डाइन-डाइन' कह कर मणि को मारता रहा। सोमराई कूद कर सामने आया। खोदन को खींच कर आगे लाया। क्रोध से काँपता हुआ बोला, "तुझे देवी चढ़ गयी है साले! देखूँ साले, तुझे, कौन बचाता है?"

खोदन चिल्लाया, "राजाबाबू! बचा लो!"

गोकुल, उद्धव, बेलुनचन्द बोले, "जो हुआ, बहुत हुआ। समाज बुला कर मणि को पीटा गया। इसका जवाब कौन देगा? क्या यह ठीक हुआ?"

विलाती नौकरानी बोली, "ऐसे समाज में कुछ नहीं हो सकता, ऐसी देवी...?"

राजाबाबू बोले, "अब तुम्हीं देख लो।"

"डाइन-भूतिन की बातें क्यों हो रही हैं, सब समझ गये हम! यह क्या कांड मचाया है?"

मणि रोती रही। रजनी रोती हुई बोली, "एक धूर ज़मीन के लिए मेरी माँ को डाइन बना दिया, राजाबाबू?"

बड़ी भयंकर बात कह दी उसने। राजाबाबू बोले, "तेरी माँ डाइन नहीं है?"

क्रुद्ध सोमराई बोला, "जो मेरी माँ को डाइन कहते हैं, उनकी माँ डाइन! चल, माँ!"

"सुनो, सोमराई! मैंने समाज को बुलाया है। तेरी माँ यदि गाँव में रहना चाहे तो उसे हज़ार रुपये जुरमाना देना होगा। हाँ, हज़ार रुपये।"

"हज़ार पैसे भी नहीं दूँगा।"

"नहीं देगा ?"

"नहीं।"

"समाज तुझे जुरमाना करता है।" सोमराई पर चीख़ते हुए राजाबाबू बोले, "हम आदिवासी हैं, समाज को मानते हैं ।"

सोमराई युवक है। इस घटना से उसका खून जल रहा था । और ज़ोर से चीख़ता हुआ बोला, "तुम-हम एक हैं ! कैसे ? तुम्हें, तुम्हारे परिवार को सलाम करते-करते हम यह भूल गये हैं कि तुम्हारा दीपक और मैं एक साथ स्कूल जाते थे। उसे भी 'परनाम हो' कहते हैं हम । हज़ार रुपये! तुम्हारे बाप के हैं। अरे, माँ के कान को दिखाने के लिए कलकत्ता जाने को तीन सौ रुपये नहीं जुटते । समाज...राजाबाबू, यह समाज का विचार नहीं है, यह तुम्हारा विचार है। तुम समाज हो, तुम सरकार हो, तुम ही सब हो। चल माँ, रजनी चल ।"

सोमराई के स्वर में दर्द था। वंचित, शोषित और हतभागों का हाहाकार । वे चले गये ।

वृद्ध भरत और प्रौढ़ा पार्वणी एक-दूसरे की तरफ़ देखते रहे। पार्वणी मणि की मौसी की बेटी है। रजनी को उसी ने आदमी बनाया था। एक मात्र लक्ष्मी अकेली गाँव में अपनी ससुराल में रहती है। 'देख, राजापुर में भी खटेगी, खायेगी। हमारे यहाँ भी खटेगी, खायेगी। तब चली क्यों नहीं आती?' ऐसी बात लक्ष्मी प्रायः हमेशा कहती रहती है। पर पार्वणी जाती नहीं थी, मणि और सोमराई के प्यार के कारण।

पापंणी सिसक कर रो उठी।तब भरत ने हाथ ऊपर उठाया। वह एक ग़रीब मज़दूर मात्र है। पर इस समय उसके खन में कुछ दूसरी ही बात है। उसे ऐसा लगा कि पुराने बीते हुए दिनों के पुराण-पुरुष मादल और घम्सा बजाकर उसे चुनौती दे रहे हैं।

जिनके मन में इस तरह की बातें आ रही हों, वे समाज की बैठक में समान रूप से बोलने के अधिकारी हैं। पर उसके ज़माने में एक राजाबाबू और सारे बाक़ी भरत तो थे नहीं ।भरत उनका निर्देश सुनता रहा। फिर उसने हाथ ऊपर उठा दिया।

राजाबाबू और उनके लोग चौंक गये। पंचायत में सभी समान होते हैं, यह सुनी बात जैसे सच हो गयी हो। राजाबाबू या उनके परिवार का कोई व्यक्ति कुछ नहीं बोला।

"मैं कुछ कहूँगा।"

"क्या ?"

"गाँव के सभी लोगों से कहता हूँ, समाज के सभी सदस्यों से कहता हूँ। राजाबाबू ने अन्याय किया है। मणि पर हज़ार रुपये का जुरमाना करना और उसे डाइन कहना, यह अन्याय है। तुम सब कहो कि यह हुकुम हम नहीं मानते। कहो, सब कहो !"

उपस्थित लोगों को भरत ने पुराने दिनों की याद दिला दी। वे चुप रहे। जैसे मन-ही-मन कह रहे हों, 'भरत ! हमें माफ़ कर दे ! पुराने समाज का अब क्या बचा है ? राजाबाबू जो कहते हैं मान लो ! हम क्या करें, हमें बताओ ? आज हमारे बीच बाबा तिलका माझी नहीं है, सिदो-कान्हू, नहीं हैं। हमें कौन साहस दे ? हमारे पास कौन है ? ये राजाबाबू अपने स्वं-जातीय बन जाते हैं, समाज बुला लेते हैं। पर सारे रंग-ढंग दूसरे लोगों की तरह हैं। राजाबाबू जैसे लोगों का समाज दूसरा है। और फिर सारी ताक़तें तो राजाबाबू के पास ही हैं। तभी हम चुप हैं। राजाबाबू के समाज में तो हरेक ग़लत बात हज़म हो जाती है, पर हमारे यहाँ तो ऐसा नहीं होता।'

भरत ने सिर झुका लिया। फिर सिर हिलाता हुआ ज़ोर से रो उठा, "अन्याय के खिलाफ़ किसे गिरह भेजूं ? यह क्या गिरह भेजने का मौक़ा नहीं है ? या यह कि अपने समाज में अन्याय के ख़िलाफ़ तुम गिरह नहीं भेज सकते ? मेरी तो उम्र नहीं, तुम्हारी तो है।"

राजाबाबू बोले, "गोकुल, बेलुनचन्द और उद्धव ! तुम पर तीन सौ रुपये का जुरमाना किया जाता है ! अगर नहीं दोगे तो काटकर फेंक दूंगा। कागज़-कारख़ाने के नाले में लाश का पता ही नहीं चलेगा। दिल्ली, कलकत्ता थाना—सब मेरे हाथ में है, यह याद रखना।"

सभा विसर्जित हुई।

प्रेतोत्सव चलता रहा। शेष होने की संभावना भी नहीं थी। उस रात के

बाद हर रात को राजाबाबू के गुर्गों ने क़हर बरपा कर दिया गाँव में। हर घर मे हाहाकार मच गया। मुंह पर नक़ाब लगाकर उन्होंने भरत, सोमराई, विलातीदासी, पार्वणी और उद्धव को घर से खींच कर मारा। मणि का हाथ तोड़ दिया। सारे घर मनुष्य की प्रतिहिंसा-प्रेत से डर कर चुप रहे। ऐसी एक भयानक रात को रजनी साँस रोक कर भागी और धान के खेतों में छुप गयी। फिर सवेरा होते ही वह शहर की तरफ़ भागी। नाले की दुर्गन्ध उसे प्रेतों की साँस की तरह खदेड़ रही थी। वह मातंग के घर पहुँची और अचेत हो गयी।

मातंग आया। तमाम आहतों को लेकर थाने गया। केस दर्ज कराया। फिर थानाबाबू ने उन्हें अस्पताल भेज दिया। मातंग ने एक बार भी नहीं पूछा कि दर्ज करके कुछ होगा भी कि नहीं ? सोमराई फूली आँखों से उसे देखता रहा। मातंग ने मुँह फेर लिया।

फिर सभा हुई। गोकुल, वेलुनचन्द और उद्धव ने चुपचाप तीन सौ रुपये दे दिये। मणि के परिवार को अलग कर दिया गया। गाँव के कुएँ से पानी लेना बंद। सोमराई बोला, "तू चली जा, रजनी !"

रजनी गयी और फिर लौट आयी। बोली, "तुम्हारा दामाद मुझे नहीं रखेगा। मेरी माँ डाइन है। डाइन लड़की घर में रखने पर राजाबाबू मुझे बिटलाहा यानी जातिच्युत कर देंगे।"

इसी तरह चलता रहा सब-कुछ। सोमराई जैसे पत्थर हो गया। उसकी माँ और रजनी पानी लाने करमपुर जाती थीं। वैशाख के महीने में वहाँ से पानी लाने के दौरान एक दिन मणि बड़बड़ाती हुई बोली, "हमारे दिन क्या नहीं लौटेंगे ? हमारे बारे में क्या कोई विचार नहीं होगा ? क्यों रे सोमराई, तू तो कितने ही साल स्कूल में पढ़ा है। तू भी नहीं बता सकता ?"

सोमराई का मन होता कि अपना सिर पत्थर पर दे मारे।

एक दिन मणि पानी लेने जा रही थी, लखिन्दर और गोपाली भी उसके साथ पानी लाने चले।

"तुम भी आ गये ?"

खोदन के एक दौरे में तुम डाइन, दूसरे दौरे में हम। अब हम एक घर के हैं।"

"यह कह दो न कि हमारा समाज बढ़ रहा है!"

"क्या करें?"

"देखते हैं।"

उसी समय राजापुर गाँव में आये बलाईबाबू।

5

बलाईबाबू की उम्र पचास के क़रीब होगी। सभी ने उनका नाम 'बलाई मुर्मू' रखा है, प्यार से। चेहरा कठोर है। सरहुल, करम, सोहराई—तमाम पर्व-पूजाओं में वह प्रमुख गवैया रहते हैं। बलाईबाबू शहर और आसपास के इलाक़ों में काफ़ी जाने-पहचाने व्यक्ति हैं। उन्होंने कभी किसी का उपकार नहीं किया, पर अपकार भी नहीं किया। उनके घर की स्थिति ऐसी-वैसी ही है। शासक-दल से अपनी मित्रता की बात उन्होंने कभी नहीं छुपायी है।

फिर पृथक जंगल-खंड का आंदोलन शुरू होते ही वे फड़क उठे थे। दिन-भर वे प्रभंजन के साथ घूमते थे। शाम के बाद वे राजाबाबू के होते थे। मणि, सोमराई, भरत के समाज में भी रमे थे। जो आदमी इतनी दारू पीता हो, इतना नाचता हो, इतना गाता हो, उस आदमी को ये लोग 'तू बड़ा अच्छा आदमी है' कहते हैं। बलाई इतना विश्वासी नहीं है, यह बात जानकर भी नहीं मानते।

बलाईबाबू साइकिल से लखिन्दर और गोपाली के पास आये। बोले, 'मैं अभी ज़िंदा हूँ। तू सब हमारे ऊपर छोड़ दे।"

सोमराई बोला, "हमारे लिए चिंता करने की ज़रूरत नहीं है तुम्हें। अगर तू हमारे पास आयेगा तो राजाबाबू तुझे बिलैती शराब नहीं पिलायेगा।"

"मत दे विलायती। हँड़िया पीऊँगा।"

"जा, घर जा।"

"रजनी को दिगम्बर नहीं रखेगा ?"

"जानता तो है तू।"

"यह क्या कांड हुआ ? लड़की कहां जायेगी ? तुम उसे कैसे खिलाओगे ?"

आजकल रजनी के साथ मां, और भाई का रोज़ झगड़ा होता है। पति के प्रेम पर अगाध विश्वास था उसका। जब कभी वह पति के पास चली जाये तो वह उसे नहीं लौटाएगा, ऐसा विश्वास था उसका। उसका पति उसे भगाने के बाद टाटानगर चला गया है, काम की तलाश में है।

भूख से तड़पती रजनी अब प्यार तलाशती है और मां, भाई के सामने पड़ने पर उन्हें नोंचने दौड़ती है।

बलाई की बात सुनकर वह गल गयी। बोली, "बच्चे को लेकर मेहनत करूंगी, ऐसा कोई काम ढूंढ़ सकते हो ?"

"देखता हूँ।"

सोमराई बोला, "लखिन्दर को संभाला, गोपाली की व्यवस्था की। अब हमें सँभालने आये हो ?"

"तुम राजाबाबू के आदमी हो।"

"किसने कहा ?"

"मेरा मन कहता है।"

"यह तू कह रहा है ?"

"हाँ बाबू, तुम जाओ।"

"समझता हूँ सब। पर मैं यह समझ नहीं पाया कि राजाबाबू ने ऐसा किया क्यों है ? उन्हें तो हम लोग दया का सागर कहते हैं।"

सोमराई गुस्से से भरा चला गया। बलाई सिर हिलाता रहा। फिर बोला, "रजनी ! भाई-माँ के साथ क्या होगा, यह मैं नहीं जानता। पर मैं धर्म-पथ पर रहता हूँ। तुम मेरे अपने हो। लखिन्दर की बातें पहले सुन लूं। फिर देखता हूँ कि क्या किया जा सकता है।"

लखिन्दर और गोपाली ने बलाईबाबू को बड़ा निराश किया। उन्होंने कहा कि मातंग को छोड़कर उनका अपना कोई नहीं है। उसके साथ जाकर थाने में डायरी लिखायी है। कलकत्ते अर्ज़ी भेजी है।

"मातंग की बात मानकर यदि थाने में डायरी लिखायी है तो राजाबाबू से दुश्मनी मोल ली है तुम लोगों ने। क्या तुम्हें ऐसा करना चाहिए था? मैंने सोचा था कि बीच में पड़कर सुलह करा दूंगा। पर तुमने यह नहीं होने दिया।"

गोपाली क्रुद्ध हो उठी और बोली, "यह देख, मेरे हाथों में कुदाल है। अभी गरदन अलग कर दूँगी तेरी! दुश्मनी हमने की या उसने की? धमकी दी कि जान से मार देगा। सब-कुछ जानता है। तू क्या सुलह करायेगा?"

"थाना बाबू ने उसके नाम पर शिकायत लिखी?"

"हाँ।"

"तो कुछ हुआ? कुछ नहीं होगा। वह भी राजाबाबू से डरता है। है कि नहीं?"

"तो क्या हुआ?"

"जान से मार देगा।"

"मरे तो हैं ही। मरने से डर कैसा?"

मातंग से बलाई की भेंट शहर में हुई। मातंग बोला, "राजापुर के पानी में पहले से ही काफ़ी विष है। तुम और ज़हर मत घोलना।"

"अरे नहीं, मुझे क्या है?"

"याद रखना।"

"तुम कुछ कर सकते हो।"

"क्या करूँ? और मुझमें क्या शक्ति रही है?"

"गिरह नहीं भेजते, क्यों?"

"वाह! क्या बात कही! गिरह भेजी, तीर चले, लाशें गिरी। फिर पुलिस ने आकर तांडव मचाया। अरे वे अलग घर में हैं, रहें। राजाबाबू जैसा चला रहे हैं, वैसा चलायें।"

बलाई वहाँ से खिसक गया।

मातंग ने पीछे से आवाज़ लगायी, "उन्हें क़ानून के अनुसार चलने को कह।"

लेकिन प्रेतोत्सव का नियम है, उसमें आदमी का खून चाहिए। राजाबाबू ने अब उधर ध्यान दिया।

उन्होंने बलाई से कहा, "रजनी को बुला सकता है तू, बलाई ?"

"क्या करोगे, राजाबाबू ?"

"उसकी माँ डाइन है, भाई बदमाश। पर इसमें उसका तो कोई दोष नहीं।"

"हाँ, उस लड़की को बड़ा कष्ट है। लकड़ी-फकड़ी बेच कर गुज़ारा करती है।"

"बच्चा नहीं है क्या ?"

"वह तो है।"

"यही तो सोचता हूँ। दोष करने पर दंड देता हूँ। पर रजनी को, उसके कष्ट को देखकर दुख भी होता है। मेरा स्वभाव कैसा है! ग़रीब-अनाथों का कष्ट मैं सह नहीं सकता।"

बलाई मंत्र-मुग्ध देखता रहा। फिर बोला, "वह फूल जैसी कोमल है, पर वज्र सरीखी कठोर भी।"

"हे...हे...हे...यह क्या कहते हो!"

"समय बड़ा खराब है।"

"बड़ा ही ख़राब।"

"कैसा लगता है ?"

"तुझे कैसा लगता है, बोल तो ?"

"मुझे तो कुछ अच्छा नहीं दिखायी देता।"

"इन बातों से कुछ समझ में नहीं आता।"

"हमारे अंचल में आपके राजनीतिक दल की प्रभुता थी। आज नहीं है।"

"वोट की राजनीति में ऐसा ही होता है।"

"सब उलट-पुलट गया है। पानी भी गंदा हो गया है। यह बड़ी बुरी बात हुई है।" राजाबाबू दीवारों पर आँखें दौड़ाते रहे। नये घर की गृह-

सज्जा के लिए उनके भांजे की पत्नी ने पिकेटोग्राफ़ मशीन से, रंगीन धागों से अनेक जीवित और मृत नेताओं की आकृतियाँ बनायी हैं। उसे वे 'क्षण-जन्मा' कहते हैं। राजाबाबू के अनुसार अगर नीलिमा विलायत में होती तो उसे नोबेल पुरस्कार मिल जाता।

ये सारी तसवीरें तीन दीवारों पर लगी हैं। एक दीवार पर राजाबाबू का दैत्यसदृश मुख है। अपनी तसवीर देखकर राजाबाबू को प्रेरणा मिलती है। वह तसवीर राजाबाबू को सांत्वना देती है, 'डरना नहीं, टूटना नहीं। तुम्हारे दिन आ रहे हैं। अगर कोई न पूछे तो भी कोई बात नहीं, साधु के नौ दिन होते हैं, चोर का एक दिन। तुम्हारी 'काल नवरात्रि शेष' होगी। दिल्ली दूर है, पर कलकत्ता क़रीब।'

राजाबाबू उसी तसवीर को देखते हुए बलाई से बोले, "सत्य स्वयं प्रकाश है।"

"सत्य माने, सत्यसखा दीघड़ि ?"

"नहीं-नहीं, सत्य माने ट्रुथ !"

"अच्छा—!"

"सत्य स्वयं प्रकाश है। सरकार बदलने से क्या होगा ? हम यही हैं, यही रहेंगे।"

"आपका ज्ञान अगम है।"

"और क्या कहोगे ?"

"प्रभंजन वाली बात। उस विषय में हमारी क्या नीतियाँ हैं, यह समझ में नहीं आता।"

"मैं उनका समर्थन करता हूँ।"

"अच्छा ?"

"समर्थन करता हूँ। ऐसा क्यों कहता हूँ...क्यों—क्योंकि आज मुझ में शक्ति नहीं है। मैं उनसे शत्रुता नहीं मोल लेना चाहता। फिर वे आन्दोलन कर रहे हैं। इससे शासक चिंतित हैं, हमें फ़ायदा हो रहा है।"

"फिर ?"

"जब मेरे पास ताक़त आयेगी तो च्यूँटी की तरह मसल दूंगा। हाँ, मुझे ताक़त दो। समर्थन तब भी करूँगा। लेकिन तुम मेरा समर्थन नहीं करोगे।

मुझे तुम लोगों ने कलंकी बना रखा है। समर्थन क्यों करूँ आखिर ?"

"तब तो स्थिति अच्छी है ?"

"अच्छी है। राम और श्याम खुद लड़कर कमज़ोर हो रहे हैं। हम गद्दी हथयायेंगे।"

"पिछले चुनावों में तो आप विरोधी थे ?"

"था। विरोधी बना, हार भी गया। ग्लानि से पीड़ित भी हूँ। फिर लौटूंगा।"

"तब तो स्थिति अच्छी ही कही जायेगी।"

"हाँ।"

"डाइन वाली बात क्या सच है ?"

"तुम नहीं समझोगे। मेरी जाति का चाहे एक भी आदमी मेरा समर्थन न करे, पर वे डाइन का भी समर्थन नहीं करते। मेरे डर से बात मान ली है उन्होंने। यह चक्कर चलाता रहा तो उन्हें विश्वास हो जाएगा।"

"इसके बाद ?"

"फिर देखना।"

"प्रभंजन को अगर खींच सकते तो...?"

"हाँ, उसे लाऊँ और वह मेरे ख़िलाफ़ गिरह भेजे ! बेटा ! मेरे सामने तो दादा-भैया कहता रहता है, पीठ-पीछे गालियाँ देता है।"

"कुछ सुविधा तो होती !"

"अरे नहीं। राजापुर में मुझसे ज़्यादा मातंग का प्रभाव है। और अब तो हवा ही उलटी बह रही है। अगर मातंग की बात बीस लोग मान लेंगे तो प्रभंजन की बात मान कर तो सारी बस्ती के लोग पागल हो सकते हैं। ये लोग 'दूसरों का भला हो तो अपना भला होता है' का ठप्पा लगाकर घूमते हैं। ये शान्ति से नहीं रहने देंगे। प्रभंजन से नहीं डरता, पर वह गरम हवा की तरह उठ रहा है। मातंग नमक-मिर्च से आग लगा रहा है। वह राजनीति नहीं करता, यह ग़नीमत है।"

"यह लौंडा, अशोक भी बड़ा टेढ़ा है।"

"जानता हूँ। दीपक है, विनय है। सारी ख़बरें मिलती रहती हैं।"

"मनसुख लाल के पास जाऊँगा।"

"अच्छा विचार है।"

"कुछ काम था क्या ?"

"हाँ, ऐसा ही है।"

"मुझसे नहीं हो सकता ?"

"तुमसे शुरू होगा। ख़त्म वह करेगा। उसे मैंने जंगल की ठेकेदारी तथा और भी कई काम दिये हैं।"

"वह याद रखता है ?"

"बुद्धि ठीक है, इसीलिए याद रखता है।"

मनसुखलाल एक जवान ठेकेदार है। यहाँ वह ट्रक-ड्राइवर और गुंडों का साम्राज्य बनाये हुए है।

"तुम ज़रा रजनी को देखो।"

"मुझ में शक्ति है क्या ?"

"अहा ! पति ने छोड़ दिया। सोमराई के पास रहकर तो वह भूखे मर जायेगी। मुझ पर वे विश्वास नहीं करते। पर यदि वह आ जाती तो कुछ ज़मीन दे देता। या कुछ रुपये देता। महुआ से दारू बनाती, पेट चलता। दिगम्बर को यदि पता चल जाये कि माँ के साथ उसका कोई संबंध नहीं है, तो वह उसे ले जाता।"

"देखता हूँ कहकर।"

"मान भी नहीं सकती है। पर तब वह पता नहीं, कहाँ चली जाये ! जवान लड़की है, विदेश में क्या बीते उस पर !"

"कहूँगा !"

"कहना कि तुम्हें वे अपना मानते हैं। बलाई, मेरा तो कहना, हमारे समाज में प्रेम से सारी चीज़ें सहन हो जाती है। उसने कहा है कि राज-नीति से नहीं, प्रेम से आगे बढ़ना होगा। अच्छी बात है, दीपक का काम भी करना होगा।"

"हाँ, मैं तो हूँ ही।"

इसी दौरान अशोक ने फिर एक बार पुलिस की नौकरी करनी चाही। फलतः सत्यसखा दीघड़ि विगड़ गया। उलझे बाल झटक कर बोला, "यह प्रस्ताव लेकर तीन बार गया।"

"तीनों वार एक ही नौकरी ?"

"कैसे लकड़ी-पुआल जली हैं, जानते हो ?"

"प्राथमिक शिक्षक बना दीजिये ना।"

"उनका स्केल कितना है, जानते हो ? सब बदमाश भर गये हैं। हज़ार-हज़ार रुपये घूस देते हैं इस काम के लिए। जो दे सकता है, वह निश्चय ही ग़रीब नहीं है।"

"सत्य-दा !"

"क्या ! तुम क्या दे सकते हो ?"

"घूस लेने वाले लोग ज़िंदा कैसे रहते हैं ?"

"वह व्यवस्था···!"

"घूस लेने वाले लोग हैं, इसीलिए तो...।"

"निश्चय ही हैं।"

"तव ?"

"हाँ रे ! जानता हूँ। तुम कहोगे, हर जगह पापी हैं। हम सब भी तो सच्चे नहीं हैं।"

"मैं कुछ नहीं कहता।"

"ठीक है, ठीक है। पर तुमने जो किया...अच्छी बात है। राजापुर का क्या चक्कर है ? सोमराई को ज़मीन मिलने पर तो सब दौड़ रहे थे, अब सब चुप क्यों हैं ?"

"देखता हूँ ज़रा।"

राजापुर के लोग अशोक से कन्नी काट गये। बोले, "ज़मीन हमें नहीं मिलेगी, भाई, और मिल भी जाये तो बड़ी मुसीवत होगी।"

"मतलब ?"

"यह भी हम जानते हैं कि तुम हमें ज़मीन नहीं दे सकते हो। यह क्षमता दूसरे आदमियों में है।"

"किसी ने कहा है कुछ ?"

"हम से ! हम से कहेगा ? हम ज़िंदा भी हैं या नहीं—किसी को पता थोड़े ही है।"

"कह क्या रहे हो ?"

"कितना कुछ हो गया। मातंग ने थाने में डायरी लिखायी, पर उससे कुछ हुआ ?"

अशोक, मातंग के पास गया। मातंग भवें सिकोड़ कर बैठा था। फिर बोला, "ना। जानना नहीं चाहते।"

"क्यों ?"

"जानकर क्या करोगे ?"

"मैं क्या कुछ नहीं कर सकता ?"

"नहीं। दूसरे पक्ष में शक्ति अपार है। तू कौन है ? तेरी पार्टी का कौन-सा आदमी है ? यहाँ तेरी पार्टी की ताक़त ही क्या है ? फिर अब जंगल-खंड की हवा भी गरम हो उठी है।"

"बोलते जाओ।"

"पर पहले मैं टाटानगर जाऊँगा।"

"क्यों ?"

"पता करने कि दिगम्बर ने रजनी को क्यों छोड़ा ?"

"दिगम्बर...रजनी का पति ?"

"हाँ, वही।"

"मतलब ?"

मातंग गरज उठा, "डाइनों का चक्कर याद है ? राजाबाबू ने मणि, लखिदर और गोपाली को डाइन क़रार दिया था। तुम बड़े कामों में हाथ डालते हो, छोटी बातों की ख़बर नहीं रखते। डाइन पर विश्वास अशिक्षित लोग करते हैं। पढ़े-लिखे कहते हैं, 'ना, ना' इन सब पर विश्वास मत करो।' इस क्षेत्र में चार-पाँच लोगों ने, धनी लोगों ने डाइन का प्रचार किया। फिर उन्हें गाँव से निकाल दिया। उससे पहले मार-पीट की। यहाँ तुम्हारा नहीं, राजाबाबू का राज चलता है। तभी उसका ऐसा दबदबा है।"

"मैं सब जानता हूँ।"

"जानना चाहा है कभी तुमने ? मैं साला बड़ा निकम्मा हूँ। थाने में लिखाया, कलकत्ता भी अर्ज़ी भेजी। लेकिन कोई जवाब नहीं आया।"

"फिर ?"

"तुम क्या करोगे, खुद सोच लो।"

"तुम ?"

"मैं जाता हूँ टाटानगर। उसके बाद इन साले सब गाँवों में घूम-घूम कर सच बताऊँगा।"

"दीपक जानता है ?"

"खूब जानता है। वह भी अपने लिए पैसे बनाने का जुगाड़ डाइनों के ज़रिए कर रहा है। वह नहीं जानेगा ?"

"पैसा ?"

"बलाई है, विनय है, इसमें क्या सोचना है ?"

विनय ने अशोक का प्रतिवाद किया। उसने तो कुछ नहीं किया।

"आप लोग दीपक को लेकर क्या कर रहे हैं ?"

"प्रेतोत्सव के समय राजाबाबू एक पक्ष संभालते रहे और विनय इत्यादि दूसरा पक्ष।"

विनय ने रुक-रुक कर कहा, "डाइन-विश्वास' पर सेमीनार कर रहे हैं।"

"क्यों ?"

"यह तुम्हारे समझने की बात नहीं है। फ़ील्ड-वर्कर गाँवों में काम कर रहे हैं। उन्हें काफ़ी तथ्य-प्रमाण मिले हैं। विदेशों से लोग आ रहे हैं। दिल्ली बाम्बे-हैदराबाद से लोग आ रहे हैं।"

"यह सब मैं जानता हूँ, विनय-दा! दीपक को क्यों खींच रहे हैं इसमें? या राजाबाबू के 'डाइन पकड़ो' अभियान में आप भी शामिल हैं? उनका तो ज़मीन का धंधा है और आपका ?"

"मेरा धंधा ज्ञान तक सीमित है।"

"जंगल-खंड के आंदोलन का समर्थन हम नहीं करते। पर जहाँ आन्दोलन चल रहा हो, वहाँ डाइन पर सेमीनार और देशी और विदेशी बदमाशों को बुलाना ज़रूरी है क्या ?"

"अशोक, तुम बेअदब होते जा रहे हो!"

"जानता हूँ। पर मैं कुछ और समझ रहा हूँ। आप क्या कर रहे हैं, यह मैंने भाँप लिया है। यह मोटी रक़म का धंधा है।"

"तुम जानते हो कि यहाँ डॉक्टर शोभन देव मलिक भी हैं। तुम जानते हो कि वे कौन हैं ? उनके जैसे लोगों के यहाँ होते हुए तुम ऐसी अशोभनीय बातें कैसे करते हो ?"

"आपने गाँव-गाँव में फ़ील्ड-वर्कर भेजे हैं। दीपक क्या उनमें है ?"

"दीपक प्रोजेक्ट-ऑफ़िसर हैं।"

"विनय-दा ! हम इसमें भयानक बाधा डालेंगे। आप जानते हैं, कभी-कभार ही समाज के लोगों को सहज ही में बेवकूफ़ बनाया जा सकता है। अब समय मुआफ़िक नहीं है ।"

"क्या करोगे तुम ?"

"देखेंगे आप। आख़िर में उसका भंडा समाचारपत्रों के ज़रिए फोड़ दूंगा। और फिर आप समझ जायेंगे क्या भीषण कांड हुआ है ?"

' यह तुम क्या कह रहे हो ?"

"आप एक ही जाति के होकर गाँव-गाँव में ज़हर फैलायेंगे और अपना काम निकाल कर फूट लेंगे। यह नहीं होने दूंगा। किसी तरह भी नहीं। किस आदिवासी समाज को आपकी समिति ने बाहर निकाला है अंधकूप से? वे भूत-प्रेत-डाइन को पकड़ कर अंधकार में डूबे रहें। समाज के इसी तरह रहने से ही आपका भला है, यही न ? और जो आदिवासी समाज में शिक्षा फैला रहे हैं, जो ऐसे हंगामे में भी प्रगति की बात सोचते हैं, ऐसे लोग क्या नहीं हैं ?"

"अब तुम्हारे साथ बातें करना ही फ़िज़ूल है।"

"मैं आपकी तुलना में अशिक्षित हूँ, यही न ? चुप क्यों हैं ? यह आप नहीं सोचते कि आपके जैसे शिक्षित और राजाबाबू जैसे लोग एक जाति के हैं। एक जाति के होकर भी आपके साथ साधारण आदमी का कोई मेल नहीं है।"

"जितना तुम्हारा है, उतना हमारा भी ?"

"आपसे ज्यादा ही है। फिर भी हम अपने समाज को अँधेरे में धकेल कर विदेशी पैसा नहीं खाते। मातंग दादा डाइन की बात को लेकर गुस्से से भरे हैं। उनके मुँह से ज़रा प्रभंजन दादा के कानों में बात जायेगी, तब

पता चलेगा कि आपमें इल्म-गुण कितने हैं !"

विनय चुप है। प्रभंजन ! आखिरकार उसी की बात की गयी। 'इस्पात एक्सप्रेस' से कलकत्ता जाना होगा। डॉक्टर शोभन को पकड़ना होगा। विनय कुछ भी नहीं। शोभन ही सब है। शोभन विचलित नहीं हुआ। बोला, "नहीं, नहीं। वहाँ सेमीनार नहीं होगा।"

"कहाँ होगा ?"

"यहाँ।"

"यहाँ ?"

"हाँ, हाँ,। नो ख़बर, नो प्रचार ! कुछ तुम्हारे आदमी, कुछ आमंत्रित अतिथि—बस।"

इस तरह वह मूल्यवान सेमीनार हुआ था। विशाल हॉल में कुल मिला कर तेरह जन थे। शोभन ने इसका एक ब्लूप्रिंट विदेशों में भेजा। वहाँ 'ऑस्ट्रिक गोष्ठी' की चर्चा थी। विदेशी कर्ता-धर्ता बड़े खुश हुए कि इतने आदिवासियों को समाज से विच्छिन्न कर छोड़ा है। नाम-धाम सब झूठ। तब भी प्रचुर धन आया।

विनय को इस सबका पता नहीं चला। वह सेमीनार के दिन रेक्सीन का फ़ोलियो और एक क़लम लेकर खुशी-खुशी लौट आया।

दीपक फिर लौटा नहीं। शोभन ने उसे सीधे दिल्ली भेज दिया, प्रशिक्षण के लिए।

रजनी तब पता नहीं क्या कर रही थी !

6

रजनी तब बलाई से कह रही थी, "पेट की आग अब सही नहीं जाती। दो, ज़मीन दो। महुआ ख़रीद कर दारू बनाऊँगी। ऐसा ही कुछ इंतज़ाम कर दो।"

ऐसे दुख में भी रजनी वड़ी ही सुन्दर लग रही थी। दिगम्बर के लिए उसके मन में असीम लालसा है। इतने प्रेम को छोड़कर वह पता नहीं कहाँ चला गया है, रजनी यही सोचती रहती है। इस समय वह और भी रूपवती दीखने लगी थी।

माँ और भाई उसकी चिंता से दुखी हैं, यह भी वह जानती थी। वह सोचती, ओह! मैं यदि इस वच्चे को लेकर कहीं चली जाऊँ तो दोनों की जान तो वचेगी।

"दो ना, ज़मीन दो।" उसने यही वात वलाई से कही। भाई को पता चलने पर सर्वनाश हो जायेगा। सोमराई कहता था, "उसके साथ किसी के पास मत जाना। वह राजावावू का चमचा है। राजावावू अव हमेशा मन-सुखलाल के गुंडों से सलाह-मशविरा करते हैं। पता नहीं, वे क्या चाहते हैं?"

रजनी अव मातंग के पास भी नहीं जाती।

क्यों जाये? मातंग ने दिगम्बर को क्यों नहीं ढूँढ़ा? वह क्यों सभी को डाइन वाली वातें वता रहा है? क्या होगा? हंगामा तो इतना हुआ, पर लाभ क्या हुआ?

रजनी अशोक के पास भी नहीं जाती।

क्यों जाये? अशोक ने क्या हल ढूँढ़ा? मजिस्ट्रेट को वताया, थाने में दौड़ा—पर लाभ क्या हुआ? अभी भी वे गाँव-वाहर हैं।

मणि कहती, "मैं डाइन हूँ...डाइन। अव डाइन क्यों वनूँगी? इतने दिन तो वनी नहीं। सरकार की दी हुई जमीन मिली हमें, लड़के को नौकरी मिली तो अव मैं डाइन हो गयी!" सोमराई रजनी के सिर पर हाथ फेरते हुए कहता, "माँ अभी ज़िंदा है। नहीं तो जमीन वेचकर शहर चला जाता।"

रजनी सोचती, 'भाई भी वड़ा वेवकूफ़ है। शहर में क्या राजावावू नहीं हैं? शहर में भी तो वही हैं। उन्हीं का शहर है। यह शहर, तेल-कागज़ के कारख़ाने, सड़कें शाल को काटती खट-खट ध्वनि, आरे की ध्वनि, आस-पास के खेत-खलिहान, डुलूंग और सुवर्ण रेखा—सव राजावावू के ही अधीन है।' रजनी को इसमें क़तई संदेह नहीं।

शाल पेड़ों से ढँके मैदान में प्रभंजन इत्यादि सभा करते थे। ट्रक से आदमी आते थे। शहर के रास्तों पर घम्सा और मादल बजाकर जुलूस निकालते थे।

सब रजनी देखती थी—स्नेह से। करने दो, पर कुछ नहीं कर सकेंगे। सभी कुछ राजाबाबू के द्वारा बेचा-ख़रीदा, ख़रीदा-बेचा जाता है। विश्व के स्वामी राजाबाबू ही हैं।

पर यह दुनिया राजाबाबू की क्यों है ?

क्यों न हो...कहो तो ! संसार क्या है, विश्व क्या है, दुनिया क्या है ? मणि, सोमराई, रजनी, लखिन्दर, गोपाली, पार्वणी, बिलाती दासी, उद्धव, बेलुनचन्द, गोकुल—ये सारे ही तो विश्व हैं। उनके जीवन का सुख-दुख, आशाएँ, इच्छाएँ ही तो सबसे महत्वपूर्ण हैं। इनके लिए ही तो इतनी सरकारी योजनाएँ हैं। इतने क़ानून, इतने रुपये और इतने सूत्री कार्यक्रम, इतने ऑफ़िसर, दफ़्तर हैं। देश के लिए वे इतने महत्वपूर्ण हैं, वे यह नहीं समझ सकते।

इसके लिए ही तो विश्व बैंक इतना रुपये उंडेलती है। इनको लेकर ही तो कितनी ही संस्था-समितियों, शोध-संस्थाओं और संगठनों को सिर-दर्द है और कितने फ्रां, बेल्जियन फ्रां, क्रोन, मार्क, लीरा, नॉर्वेजियन क्रोन, क्रोना और अन्य मुद्राएँ नियाग्रा के जलप्रपात की तरह बहती हैं। विश्व में ये कितने महत्वपूर्ण हैं, ये लोग समझ नहीं सकते क्या ?

इनके लिए कितना साहित्य, सिनेमा, नाटक-थियेटर,पत्र-पत्रिकाएँ हैं !

साहित्य-शिल्प-संस्कृति के लिए भी ये लोग बहुत महत्वपूर्ण हैं।

यह धरती इनकी ही होगी, इसके लिए सूरज के साथ इतने नक्षत्रों का विवाद चल रहा था। फलत: पृथ्वी का जन्म हुआ। आज 66 हज़ार मील की रफ़्तार से पृथ्वी सूरज को घेर कर चलती है ! उसे घेर भी लेती है और उसे याद भी दिला देती है...।

रजनी दिगम्बर के पास सुख से रहेगी। उनके बच्चे बाहर खेलते रहेंगे —यह बात हुई थी !

भरत और पार्वणी, उद्धव व बिलाती दासी मेहनत करेंगे, खटेंगे और अपने घर में सुख से रहेंगे—यह बात हुई थी !

मणि अपनी मूर्तियों की पूजा करेगी और सोमराई को खाना पकाकर खिलायेगी—यह बात भी हुई थी। यह बात भी थी कि सोमराई अपने एक टुकड़ा ज़मीन पर, जितनी बार चाहेगा, उतनी बार उसकी छाती को धान-मिट्टी और रवी की गंध से भर देगा। पृथ्वी सूरज को घेरती भी है, उसके गिर्द घूमती भी है और कहती भी जाती है, 'अब तो यह सब हो नहीं रहा है...तब मैं...मुझसे इतना परिश्रम क्यों करवा रहे हो ?'

सूर्य चुप रहता है और अपनी चुप्पी में वह प्रचंड अग्नि बिखेरता रहता है। राजाबाबू राजाबाबू ठहरे ! राजाबाबू की उम्र कई करोड़ वर्ष की हो गयी है। वह हैं, इसीलिए तो इतने ज़रूरी काम हो रहे हैं।

इसीलिए तो तमाम दुनिया राजाबाबू की है। क्यों ? इस विश्व के सबसे महत्वपूर्ण लोगों को वे नियंत्रित करते हैं।

रजनी ने सब-कुछ मान लिया। वस्तुतः मणि, सोमराई, लखिन्दर, गोपाली—सब इसी मानसिक अवस्था में पहुँच चुके हैं।

जब प्रेतोत्सव शुरू हुआ था तो यह सारा घटना-चक्र बड़ी तेज़ी से घूम गया था। आदमी दौड़ते रहे—अस्पताल, थाना, मातंग के पास। तब सभी के मन में यह आशा बलवती थी कि दुःस्वपनों की यह रात कभी तो ख़त्म होगी। बेशक सभी इसकी बड़ी सारी क़ीमत चुकायेंगे, पर रात तो कटेगी।

फिर कितने ही दिन बीत गये। बैसाख-जेठ गये। दुःस्वप्न नहीं ख़त्म हुए। अब रजनी इत्यादि जानते हैं कि वे हमेशा इसी तरह गाँव से बाहर होकर रहेंगे—हमेशा, राजाबाबू के गाँव में। उनके घर के पास सरकारी कुआँ होने के बावजूद उन्हें बहुत दूर से जल लाना होगा।

सब-कुछ जानकर वे अपने ही भीतर खोल में घुस गये हैं। पहले ये बातें कहीं नहीं हमने, राजाबाबू के डर से। अब भी नहीं बोलते, क्योंकि विरोध नहीं कर सकते। बिना मतलब सिर पीटने से लाभ भी तो नहीं। अब वे काम करते हैं। दुकान में जाते हैं, शहर जाते हैं, बाजार में जाते हैं। सब-कुछ करते हैं। जो बातें करते हैं, उनसे वे भी बातें करते हैं। पर वह अंतर में ज़रूर समझ गये हैं। यह दिनोंदिन चलता जीवन-प्रवाह, ये सब जाने-पहचाने चेहरे—इनके साथ वास्तव में उनका कोई संबंध नहीं है।

वे उनसे अलग हैं।

भाग्य को स्वीकार कर के रजनी के चेहरे पर और आँखों में उदासी स्पष्ट झलकती है। बीच-बीच में वह स्टेशन पर जाकर खड़ी हो जाती है। ऐसी ही किसी ट्रेन में बैठकर दिगम्बर कहीं चला गया है। वह उदास आँखों से ट्रेन का रुकना व जाना देखती रहती है। रजनी भी चली जाती उसके साथ। पर यह सारी दुनिया राजाबाबू की है, इसलिए वह कहाँ जाये ? दिगम्बर जब राजापुर में छात्रवृत्ति की परीक्षा देने आया था तो उसने रजनी को पसंद कर लिया था। शादी बाद में हुई थी।

रजनी दिगम्बर से कहती, "सोना नहीं दे सकते तो क्या हुआ, तुम ही तो मेरे शरीर का गहना हो।"

दिगम्बर के कारण रजनी ने नाक छिदवायी। पहले उसमें नीम की डंडी, फिर नाक सूखने पर नथुनी। हाट-बाज़ार में नथुनिया मिलती हैं बहुत। पर यह सब पहनना नहीं हो सका। उसके पहले ही सब-कुछ तहस-नहस हो गया। रजनी और उसकी सहेलियाँ गाती थीं—

इतने बड़े देश में
ई—
नाम रखा राजदा भाद।
राजदा सरसती गुला छी आखड़ा,
शालुक फूल तिरि भाद माया छाड़िल।।

राजदह गाँव का भादो शाल-फूल जैसी सुन्दरी बहू के मोह को त्याग कर चला गया। नये पत्ते से भरे फूलों की पेड़ जैसी, वर्षा-जल से भरी डुलूंग की तरह उछलती रजनी को छोड़ दिगम्बर कहाँ चला गया ? उसका फूलों जैसा बदन सूख गया है, आषाढ़ का धान सूख गया है, डुलूंग का जल बालू में सूख गया है।

झरना, जरना झरना ज्वाला रे,
यौवनेर बेला तिरिर ज्वाला।।

(गहन वन में झरने को ढूंढ़ना ही बड़ी ज्वाला है। उससे बड़ी ज्वाला है भरे यौवन में प्रियतम को न पाना।)

रजनी स्टेशन पर खड़ी रहती और सोचती रहती। सोमराई आता

और उसे पकड़ कर ले जाता। रजनी, सोमराई, मणि, लखिन्दर, गोपाली जब एक साथ बैठते तो आपस में बातें करते। उद्वेग में, ममता में, क्रोध में, दुख में, प्रेम में स्वाभाविक रूप से बातें चलतीं।

सोमराई रजनी का हाथ पकड़ता और कहता, "जो सोच रहा था, वही हुआ। स्टेशन पर इस तरह खड़ी रहती है। कभी कोई पकड़ कर चालान कर देगा। बहुत बार ऐसा हो चुका है।"

"ट्रेन देखती हूँ, दादा!"

"ऐसे मत सूख, रजनी! तेरा कोई दोष नहीं। मातंग दादा ने आशा नहीं छोड़ी है अभी। उसे ले आयेगा ज़रूर। चल बहन, घर चल।"

"चलो।"

जब वे घर लौटते तो सब जैसे बर्फ़-सा हो जाता। शिशिर मास।

इसी तरह सब-कुछ चलता रहा। ऐसे ही सभी कुछ चलता है। पर अचानक एक दिन बलाई ने रजनी को बुलाया।

"शाम को चली आना।"

"क्यों?"

"बात करनी है।"

"क्या?"

"बात राजाबाबू बतायेंगे।"

"उनका कुछ पता चला?"

"हाँ रे! सुना है कि वह राजापुर आयेगा। तुझे देखेगा। फिर तुझे लेकर चला जायेगा।"

ऐसी खुशी की ख़बर भी बलाई ने सूखे मुँह से रुक-रुक और सोच-सोच कर दी थी। अगर रजनी सुनकर पागल नहीं हो गयी होती तो वह ज़रूर समझ जाती कि यह बात झूठ है। उसने कुछ नहीं समझा और उत्तेजित हो उठी।

"लड़के को लेकर चली आऊँ?"

"तू तो आ पहले। लड़के की चिन्ता बाद में। तेरा लड़का है। और एक बात, यह बात किसी से मत कहना।"

"नहीं, नहीं कहूँगी।"

"सोमराई को पता नहीं चले।"

"नहीं, वह नहीं जानेगा।"

रजनी जल्दी-जल्दी लकड़ी का बोझा लेकर शहर गयी। मुंशीराम, खोदन और प्रह्लाद तथा बहुत-से लोगों ने देखा कि रजनी और बलाई बातें कर रहे हैं। रजनी ने बात छुपाने की कोशिश की, पर सफल नहीं हो पायी।

अरे माँ! चैत से अगहन कितने दिन हुए? ब—हु—त दिन। लकड़ी आज उसने पौने दामों पर बेच दी। फिर पहलवान की एक दुकान से उधार साबुन ख़रीदा। सिर का तेल भी। घर लौटकर वह दूर गांव के कुएँ पर जाकर प्रेम से स्नान कर आयी। फिर लौट कर उसने खाना पकाया।

मणि को संदेह हुआ।

"हाँ रे! तुझे क्या हुआ है?"

"क्या होगा?"

"इतनी बन-ठन किस लिए?

रजनी हँसी। जल्दी-जल्दी भात खाते हुए बोली, "मौसी के घर जा रही हूँ, माँ!"

पार्वणी है उसकी मौसी। उसे आदमी बनाया है उसने। इन दुख-भरे दिनों में पार्वणी, बिलाती दासी और भरत इत्यादि लोगों ने ही उनकी देखभाल रखी है। पार्वणी को देख कर रजनी उससे चिपट गयी।

"क्या हुआ, बेटी? तू इतनी खुश है?"

रजनी अब कुछ छिपा नहीं पायी। हँसते-रोते उसने सारी बातें कह दीं।

पार्वणी बोली, "बात तो अच्छी है, बेटी! पर ख़बर जिसने दी, जिसके पास तू जायेगी, यह सब तूने सोच लिया है न?"

"तू ना मत कह, मौसी! जा कर देखा नहीं है। उसके बाद ही तो माँ या दादा से कहूँगी।"

"तो तू जायेगी? मैं चलूँ साथ?"

"नहीं मौसी, गड़बड़ हो जायेगी।"

"तेरे लिए डर लगता है।"

"मौसी! मेरा मन कहता है कि ख़बर अच्छी है, सच्ची है। मैं तुम्हारे दामाद को जानती हूँ, मौसी! वह आदमी चाँद-सूरज देखे बग़ैर रह सकता है, लेकिन मुझे बिन देखे नहीं। मैंने कसम दी है तुझे, किसी को मत बताना।"

पार्वणी से यह सब कहने के बाद ही रजनी का मन शांत हुआ। घर लौट कर न जाने कितने ही दिन बाद उसने बच्चे को दुलराया, सुलाया और गीत गाया—

धन धन धन,
जाना नहीं रे वन।
घर पर ही बना दूँगी
रतन का सिंहासन॥

शाम को सूरज ढलते-ढलते उसने माँ से कहा, "सहेली जा रही है, माँ! मैं ज़रा उसे देख आऊँ। वह मूढ़ी भूनेगी बस। खाकर आ जाऊँगी।"

साफ़-धुले कपड़े पहन कर, तेल से मुंह चमका कर, बाल बाँध कर रजनी तैयार हुई। कमर में करधनी, हाथ में जस्ते की चूड़ियाँ। रजनी खूब सजी थी।

घर लौटकर, सोमराई ने कहा, "उसे क्यों जाने दिया? उसका दिमाग़ ठीक नहीं है।"

"उसकी एक ही तो सहेली है—रांगनाडिही की बातासी। फिर रांगनाडिही पास में ही है। अगर देर हुई तो मैं बुला लाऊँगी। चेहरा उतारे बैठी रहती है। मैंने कहा, जाने की इच्छा है तो चली जाये।"

"कौन-सी सहेली बतायी?"

"बातासी।"

"बातासी तो परसों ही शुशुनिया चली गयी।"

"यह क्या कहता है?'

"मैंने तो यही सुना है। रुको, मैं देखता हूँ। उसका दिमाग़ ख़राब हो गया है। हर समय पता नहीं क्या सोचती है, क्या करती है! उसे कोई होश नहीं है। उसे लेकर मुझे महा चिंता हो गयी है। उसे डाँटते हुए भी

डरता हूँ। पता नहीं, क्या कर बैठे ?"

साँझ ढल गयी। रात चढ़ गयी। रजनी नहीं लौटी। सोमराई पहले तो 'जाये जहाँ मन करे' कहता हुआ बैठा रहा, पर बाद में मन के उद्वेग में लालटेन लेकर निकला। जाते-जाते पार्वणी को कह गया, "माँ अकेली है, ज़रा थोड़ी देर बैठो उसके पास।"

"अभी गयी तो लौटूँगी कैसे ? एक तो रात को आँखों से दीखता नहीं, ऊपर से खेतों में से होकर जाऊँगी कैसे ? खाऊँगी क्या ?"

"नहीं। भात ले जाओ। चलो, पहुँचा दूं। वहीं रात-भर रहो।"

पार्वणी को घर पहुँचा कर सोमराई चला गया। रांगनाडिहि ज़्यादा-से-ज़्यादा एक मील होगा। बड़ी देर बाद वह लौटा। साथ में खोदन था। खोदन की उन्मत्तता ओढ़ी हुई थी। राजाबाबू का हुकुम था। यह बात खोदन ने कई महीने बाद ताड़ीख़ाने में स्वीकार की थी और पीछे सोमराई का हाथ पकड़ कर रोया भी था। तब से दिन को तो नहीं, पर शाम के बाद लुक-छिप कर दो-एक बार उसके पास आया भी है।

सोमराई खोदन को साथ ले आया। बोला, "माँ ! जो मैंने कहा था, वही सच है। बातासी नहीं है। उसकी बहन ने बताया कि उसने उसे दौड़ते हुए शहर की तरफ़ जाते हुए देखा है। पर खोदन दूसरी ही बात बता रहा है।"

"क्या...क्या कहता है रे ?"

"चुप; चुप ! चिल्ला मत ! कह रहा है, बलाई रजनी से बात कर रहा था। औरों ने भी देखा है। यह क्या हुआ, माँ ?"

पार्वणी तब रो उठी।

"तू क्यों रोती है ?"

"वह दामाद के पास जा रही है, यही कहा था उसने मुझसे। बलाई ने उसे यही ख़बर दी थी। उसने कहा...।"

पार्वणी से सब-कुछ सुन कर खोदन निश्चल खड़ा रहा। सोमराई बोला, "मैं जा रहा हूँ बलाई बाबू के पास। या राजाबाबू के पास जाऊँ शहर में ?"

खोदन ने सिर हिलाया—'सोमराई, राजाबाबू के पास मत जाना।

रात को जाने पर तुझे थाने में बन्द करवा देगा। अभी बहुत रात बाक़ी है। मातंग दादा के पास जा।"

सोमराई हठात रो उठा, पर तुरन्त शांत भी हो गया।

"मैं क्या अकेला जाऊँ?"

"मैं चलूँ?" पार्वणी ने डरते हुए पूछा।

"अंधी बुढ़िया का काम नहीं। मर्द चाहिए।"

"लखिन्दर को बुलाऊँ?"

"चल, मैं चलता हूँ," खोदन बोला, "जो होगा, देखा जायेगा। चल, मैं चलता हूँ। गाँव-बाहर कर देगा। मर तो नहीं जाऊँगा। तुम सब भी तो जिंदा हो।"

"चलो," सोमराई ने ठंडी साँस भरते हुए कहा। जैसे आज उसने अपने-आपको खोदन को सौंप दिया हो।

"माँ, मौसी! किसी को पता नहीं चले!"

मातंग उन्हें देख कर चकित रह गया। दोनों को रात-भर रोके रखा उसने। उन्होंने मूढ़ी भिगोकर खायी। सबेरा होते-होते वे बलाई के घर पहुँचे। बलाई ने अस्वीकार में सिर हिला दिया।

"मैंने कब उससे बातें कीं?"

खोदन ने सूखे होंठों पर जुबान फिरायी और बोला, "हमने देखा है। कल बात कर रहा था। बहुतों ने देखा है। पहले खड़े रह कर बातें कीं, फिर उकड़ूं होकर बैठ कर बहुत देर बातें कीं। तब बारह बज रहे थे। नदी, रांगनाटिही के मोड़ पर...बड़ के पेड़ के नीचे।"

"क्या कहा था उससे? कहाँ जाने को कहा था?"

"ऐसी कोई बात नहीं कही," झूठ बोलते हुए बलाई सफ़ेद हो गया।

"नहीं। मेरी बहन से तुमने यह बात नहीं कही थी कि तेरा मर्द आया है? शाम को राजाबाबू के घर आ जाना, वहीं भेंट होगी। तुमने मना किया कि सोमराई को मत बताना। बच्चे को साथ मत लाना। इतनी बातें भूल गये हो? उसने ये सारी बातें पार्वणी मौसी को हँसते-हँसते बतायी है।'

कोई नहीं था। ठेकेदार के गुंडे ताश खेल रहे थे। मैं जानता हूँ, राजाबाबू काफ़ी देर बाद लौटे थे।"

"उसका क्या हुआ, बलाई बाबू ?"

"मैं नहीं जानता।"

मातंग बोला, "एक पैर आग में, दूसरा पानी में रख कर बहुत दिन चलते रहे हो। इस बार क़ीमत चुकाओगे। चल, सोमराई ! एक बार और तेरे घर में देख लेते हैं। फिर इसकी व्यवस्था करेंगे। इस बार तुम समझोगे, बलाई मुर्मू !"

बलाई पाषाणवत खड़ा रहा।

बात कह कर थूकते हुए मातंग इत्यादि बाहर निकल आये। राजापुर की ओर चले। रजनी नहीं लौटी राजापुर भी। वे शहर लौटे। इस बार उनके साथ अशोक भी था। थाने में उसने रजनी के ग़ायब होने की रिपोर्ट लिखायी।

सारी घटना ने राजापुर गाँव, शहर और दूसरी जगहों पर एक तरह की उत्तेजना फैला दी। राजापुर में जो लोग पहले राजाबाबू से डरते थे वे भी रजनी को ढूंढ़ने चले।

प्रेतोत्सव का परिणाम राजाबाबू के मन-माफ़िक नहीं हुआ। सोमराई को शत्रु बनाने से क्या लाभ हुआ ? प्रतिदिन पार्वणी और मणि छाती पीट-पीट को रोती हैं। गाँव के सभी लोग उनके घर में हैं। यह क्या हो गया ? थाने में जाना होगा एक बार।

पाँच दिन के बाद थाने में एक बड़ा दल आया। एक ही माँग को लेकर आये एक साथ। प्रभंजन, अशोक, मातंग और राजापुर के अन्य दसेक लोगों को देखकर थाने के बड़े बाबू का दिमाग़ घूम गया। बड़े बाबू जानते हैं कि विभिन्न दलों और दिमाग़ों के आदमियों के बीच प्रबल भिन्नता ही पुलिस को शक्ति देती है। पर रजनी के गुम हो जाने पर यह भयानक एकता क्यों ? इसका मतलब क्या है ? बलाई को ये प्रायः हमेशा ही पकड़ लाते हैं, यह भी समझ में नहीं आता। बड़े बाबू के मन में संदेह जगा। राजाबाबू का सूर्य अब अस्त हो रहा है क्या ?

"क्या बात है ?"

प्रभंजन लगभग काटने के स्वर में बोला, "रजनी वाली बात ! इस बलाई ने जो कुछ कहा, उसी के कारण रजनी चली गयी।"

"मैंने कुछ नहीं कहा। ये झूठे आरोप लगा रहे हैं। रजनी किसी लड़के के साथ भाग गयी होगी। या अपने पति के घर चली गयी होगी।"

"ठीक है ! पर साधू तो कुछ और ही कह रहा है। क्यों ? चौंके क्यों ?"

"साधू को नहीं पहचानते ? राजा बाबू का नौकर ? वह उस दिन वहीं था। जब राजाबाबू ने तुम से यह बातें की थीं।"

"साधू ! तूने यह काम किया ?"

"समाज कहता है कि रजनी का पता नहीं चला तो गिरह चलेगी। तुम्हारा, राजाबाबू और तारानाथ बाबू का इंतज़ाम किया जायेगा। मैं क्या समाज से बाहर हूँ ?"

बड़े बाबू बोले, "यह सब क्या है ?"

मातंग बोला, "इस सब में तुम्हारा क्या है ? तुम हमारी अर्ज़ी लो, काम करो। लेकिन हमारी बात सुन लो। रजनी को खोजने में अगर थाने ने हमारी मदद नहीं की तो फिर फल भुगतना होगा तुम को भी !"

"देख रहा हूँ।"

"और इसका बयान भी लिख लो।"

"यह कौन है ?"

"इसका न.म रघुनाथ है। राजाबाबू के घर के पिछवाड़े में रहता है। बोल रे रघुनाथ !"

"लिखिए, लिखिए," रघुनाथ ने भवें सिकोड़ते हुए कहा, "जिस दिन रजनी ग़ायब हुई है, उसी दिन पाँच तारीख को दस बजे हम एक लड़की की चीख़ सुन कर बाहर निकले। बचाओ ! बचाओ ! चीख़ते हुए एक लड़की भाग रही थी। उसके पीछे दो आदमी थे।"

"कहाँ ? तुम्हारा घर कहाँ है ? किस तरफ़ भागी ? सब ठीक तरीक़े से बताओ।"

रघुनाथ बताता रहा।

अब बात को दबाये रखना असंभव हो गया। दल के दल लोग रजनी

रहा उस दुर्गंधित शव के ऊपर।

काफ़ी देर तक!

पुलिस बोली, "लाश थाने में ले जानी होगी।"

सोमराई ने सिर हिलाया। "कंधों पर होती हुई रजनी शहर में घूमेगी! राजाबाबू को अपना चेहरा दिखायेगी। उससे पहले थाने में नहीं जायेगी।"

पुलिस सोचती रही कि एक गुम संथाल युवती की लाश को शहर में घुमाना क़ानून तोड़ना है कि नहीं?

सोमराई ने चेहरा उठाया। साफ़ पर कठोर आँखों से देखा मातंग को, अशोक को, प्रभंजन को। ऐसा लगा जैसे आँखें तीर की तरह कलेजे चीर जायेंगी। उसकी दृष्टि ही अब तीर का फलक है। वह दृष्टि जैसे कह रही थी—

'तुम्हारे करने को क्या कुछ बचा है? तुम कुछ करोगे? तुम कुछ करोगे?'

मातंग, अशोक और प्रभंजन ने सिर झुका लिया। सोमराई इस तरह क्यों देख रहा है?

सोमराई ने इस बार सभी को देखा। उसकी आँखें विस्मित हैं, वह पता नहीं क्या तलाश रहा है!

फिर उसने सिर हिलाया। बोला, "आज मेरे साथ कितने लोग हैं! तुम सब कितने अच्छे हो! इतने अच्छे लोगों के होते हुए मेरी बहन को मरना पड़ा। क्यों?"

सब चुप।

फिर भरत आगे आया। सोमराई से बोला, "उठ सोमराई! अगर कोई रास्ता नहीं है तो शाल के पेड़ तो हैं, उसकी छाल तो है। हम गिरह भेजेंगे।"

सबने आँखें उठायीं। हाँ, हैं! शाल-वृक्ष तो हैं। वे आगे बढ़े। रजनी को उठा लिया।

प्रेतोत्सव के बाद एक और उत्सव होता है प्रेत-निधनोत्सव। इसी तरह। यही नियम है।

हुलमाहा[1] की माँ

नाम था महनि। बात 1855 की है। तब वह दूर वन में जाती थी, लकड़ी चुनने। रहती थी भगनाडिहि गाँव में। कोई उसके साथ नहीं था, कोई संगी नहीं था। कौन जानता था कि संथाल-जगत पर विपत्ति के बादल मँडरा रहे हैं? तभी तो घर-घर में औरतें सहेलियाँ बना रही हैं। महनि ने भी बनायीं। पता नहीं, कौन-सी विपत्ति है! हाट जाओ, बाजार जाओ, विपदा की बात सुनो। पर भलाई इसी में है कि सब मित्र बन जायें।

क्यों रे क्यों? क्यों सहेली बनायें? सहेली बनाने पर बाप का घर, पति का घर, हमारा घर, हमारे बाप का घर, पति का घर—सभी जगह सब मित्र बन जाते हैं। हम कष्ट में हैं, हम संथाल हैं। पता नहीं, कौन-सी आँधी आ रही है! अभी सब का मिल-जुल कर रहना ज़रूरी है।

अरे देखो रे! एक अजीब 'मित्र बनाओ' अभियान चल रहा है। राखालिया संथाल लड़के एक साथ गायें चराते हैं। कचे और काति-खेला खेलते हैं। वे बने मीता। औरतें करम-पर्व में एक-दूसरे के बालों में करम के पत्ते सजाती है। वे एक-दूसरे की काराम-डार हो जाती हैं।

एक दूसरी तरह से भी सखियाँ बन रही हैं। "ठीक है, मैं तुम्हारी सखी हूँ, तुम मेरी। पर यदि हम सखी बन गये हैं। तो 'दिकुओं यानी विदेशियों' की तरह मुझे तुम क्यों कहती हो, तू कह। देख बहन, तू ही बता ज़रा। मैं तो बच्चे होते हुए भी निपूती हूँ, तू बच्चों की माँ है। मेरा तो अपना कहने वाला कोई नहीं है, तू हमें देखेगी दुख-सुख में।"

महनि का बदन पका और गठा हुआ है। शरीर अभी भी सख़्त है। उसने सखी की तरफ़ देखा, फिर हँसी। दोनों ने एक-दूसरे की तरफ़ देखा,

---

1. क्रांति, विद्रोह

फिर पेड़ की तरफ़ देखा। फिर दोनों ने एक-दूसरे को शाल के पत्तों का मुकुट पहना दिया। अब तो जंगल में पाँच पड़ोसी तक नहीं। पाताल तक ढूँढ़ना होता है। सब एक-दूसरे की खबर लेते हैं। "तू मेरा शाल-पत्ता, मैं तेरा शाल पत्ता मेरे घर खाना एक दिन, मैं तुम्हारे घर खाऊँगी। दूसरे दिन।" सखी चली गयी, सिर पर लकड़ियों का बोझा लेकर। महनि मुसकराती हुई लकड़ियाँ बटोरती रही।

महनि संथाल लड़कियों में नाम नहीं होता। पहाड़ों में कोई लड़की लकड़ी, कंद-मूल वगैरह नहीं बटोरती। क्यों नहीं? बोल तो! जिसका कोई नहीं होता, उसका समाज होता है। यह बात नहीं है कि दिकुओं के समाज में महनि अकेली पड़ गयी है तो सभी उसे छोड़ दें। 'दिकू' समाज बड़ा गंदा है, महनि यह जानती है। वह यह भी जानती है कि इस समाज के कारण ही उन्हें इतने कष्ट हैं। उनके पैरों में बारोंबार वेड़ियाँ डाल दी जाती हैं। भगनाडिही में तो वह अभी आयी है। पहले वह रहती थी बहुत दूर, नलपुर में।

वहीं उसका जन्म हुआ था। दिकुओं के घर में। कैसे? यह बड़ी लवड़-झवड़ कहानी है रे! बड़ी लहर-बहर करती नदी के तरंगों-सी कहानी है।

महनि तब माँ के पेट में थी। महनि का बाप, दिकू के पास बेगारी करता था, बँधुआ था। वह आदमी कहता था, "एक अंजुरी-भर रुपया दे और निजात पा ले।"

बाप सुनकर हँसता था। 'निजात पा ले' कह कर दिकू भी हँसता था। वह जानता था कि उसने मज़ाक़ किया है। बाप भी जानता था कि वह आदमी मज़ाक़ कर रहा है।

महनि का बाप जानता था कि न वह एक अंजुरी रुपये देगा, न उसे निजात मिलेगी। तब ही तो वह रात को थोड़ी हँड़िया पीकर सो रहता था। पर फिर सिर झटक कर सहसा जग जाता और कहता था, "एक अंजुरी रुपये भी नहीं दूँगा। ख़लास भी नहीं होऊँगा। सो तू जो कहे, वैसा करता रहूँगा।"

पत्नी कहती, "किससे कह रहे हो?"

"तेरे पेट में जो है, उसे ही कह रहा हूँ।"

"वह सुनता है ?"

"न सुने तो कैसे चलेगा ? वह तो केवल यही कहता है कि बाप तू एक अंजुरी रुपये दे और निजात पा ले। नहीं तो मैं जनम नहीं लूंगा। माँ के पेट में ही रहूँगा।"

"समझी। तू सो जा।"

"सोऊँ ? ठीक है।"

"लड़का हो या लड़की। जनम पर खर्च तो होगा ही। तुझे पता नहीं है क्या ? कैसे-कैसे क्या होगा ?"

"इतना क्यों सोचती है तू ? मैं तो नहीं सोचता। क्यों सोचूं ? एक अंजुरी रुपये देता, मुझे छुट्टी मिलती तो सोचता। अब क्यों सोचूं ? सो जा, सो जा। सवेरे बहुत काम है। हाँ, लड़का या लड़की जो भी हो, मुझसे कहता है कि—रुपया देकर निजात पा लो। वरना पैदा नहीं होऊँगा। दिकू आदमियों के बँधुआ के घर जनम लेने पर मैं भी बँधुआ हो जाऊँगा।"

उस गाँव में वह आदमी अकेला दिकू है। उसे छोड़ सब संथाल हैं। आदमी ने बाप को तो बंधुआ बनाया है पर पत्नी को कहता है कि "उन्हें पेटभर खाने को दे। गाँव में तुम्हारे भाई-बंधु नहीं हैं। सभी कुछ वे ही हैं। तेल-बेल दो, पेट के लिए भात दो। दो आदमी हम पोसेंगे तो दस आदमी का काम होगा।"

ऐसे आदमी की बैलगाड़ी धान के खेत से होकर बोझा लादे चली आ रही थी। धान का बोझा खींचते-खींचते बैल बेदम हो गया। मुँह के बल ज़मीन पर आ रहा। बैल के ग़म में उस आदमी ने सिर पकड़ लिया। एक मुट्ठी रुपये देकर ख़रीदा था बैल। कैसे टेढ़े सींग थे, कैसा जबर शरीर ! "अरे ! मुंह बा कर क्या देख रहे हो तुम सब ! बैलगाड़ी कंधे पर लाद कर खड़ी कर दो-एक अंजुरी रुपये दूंगा। उठा, उठा ! गाड़ी खींच दे। एक अंजुरी रुपये दूंगा। यह रुपया मेरी कमर में बंधा है। इन्हीं रुपयों से मैं अंजुरी-भर दूंगा।"

"एक अंजुरी रुपये देगा ?"

"तू कौन ? बँधुआ ?"

"हाँ बाबू ! रुपये देगा ?"

"दूंगा रे, दूंगा।"

महनि के वाप ने दोनों आँखें पोछीं और हाथों में धूल लगायी। बोला, "वह कहता है रुपये देगा। मुझे छुट्टी मिल जायेगी।"

"जरूर!"

पाँच लोग वोले, "अरे छटराय, उस गाड़ी को उठायेगा तो कलेजा फट जायेगा, तू मर जायेगा। तेरी वीवी के पेट में बच्चा है। यह क्या करता है?"

महनि का वाप वोला, "वच्चे के लिए ही तो यह सब कर रहा हूँ। उसने मुझसे कहा है, बँधुआगिरी से छुट्टी पा ले बाप, नहीं तो मैं पैदा न होऊँगा। बँधुए की संतान भी बँधुआ ही होती है।"

लोग वोले, "आज तू बँधुआ है, कल हम भी हो सकते हैं। दिकू जब इधर आते हैं तो विभिन्न प्रकार के फंदे फेंक कर हमें बँधुआ बनाते हैं। हाँ, छटराय! वेकार की ज़िंदगी में कष्ट बहुत है, पर तू अगर मर गया तो हमारा एक आदमी कम हो जायेगा।"

"मरना है तो ज़रूर मरूँगा। लाँगड़, झिका, वाहा, करम—कभी नाचूंगा नहीं, हँड़िया भी नहीं पीऊँगा। लेकिन मरूँगा कैसे? मैं मरूँगा? धत साले! सेंद्रा रेयान में, शिकार-पर्व पर। शाल पेड़ की डाल लेकर मैं ही जाऊँगा। तुम सव देखना। लो, सव आँखें फाड़ कर देख लो।"

महनि ने वोझ लदी वैलगाड़ी को कंधा दिया और ठेल कर उठा लिया। पके धान उसके काले अंगों पर सोने की तरह झरने लगे। "देखो, उसने कंधा लगाया और गाड़ी को अधर उठा लिया! मारांग बुरू की जय! जाहेर बूढ़ी की जय! देखो, छटराय ने एक चमत्कार किया है।"

उसने फूस की डोरी वनायी और दिकू-पत्नी से वोला, "इतना हंगामा क्यों मचा है आज? आज इतना आनंद क्यों है?"

"वह क्या जाने?" महनि की माँ खिलखिला उठी। वोली, "किसी ने सूअर का शिकार किया है। शिकार ला रहे हैं। तभी यह हंगामा है।"

महनि की माँ को कुछ समझ नहीं आया। यह भी समझ में नहीं आया कि जिनके कारण उसके हाथों में चूड़ियाँ, माँग में सिंदूर चढ़ा है, वही आज अभी अपने पुरखों के पास जाने वाला है। वह फूस की रस्सी को उमेठ-

ख़रीदते थे, हाट में चार पैसे में वेचते थे। इस तरह हमें भी ठगते थे। तुम चले जाओ। तुम वेगारी करवाते हो। छटराय मर गया !"

वह डरा हुआ था। थर-थर काँप रहा था। "अब देश में साहेब लोग आ गये हैं। क़ानून है। ख़रीदी हुई ज़मीन छोड़कर कोई जाता है भला ? तुम तो धर्म से चलते हो, तुम ही विचार करो।"

माझी वोला, "तुम्हारा सिर कंधे पर सही-सलामत है, इसीलिए बड़ी-वड़ी वातें कर रहे हो...हाँ ! एक वार टाँगी उठ गयी तो बग़ैर सिर काटे नहीं उतरेगी ! और तेरी बीवी रोते-रोते मर जायेगी। यही चाहते हो क्या ?"

काले-काले आदमी उसे पत्थर-सी आँखों से देख रहे थे। इस आदमी के साथ इतनी वातें क्यों ? यह पहले यहाँ नहीं था। आज संथाल-बस्ती में है। एकदम काँटा गाड़ दिया है। अरे ! थोड़ी खेती कर ले। लोभ-लालच मत कर। पेट भर खा, कुछ वेच दे। लेकिन वह माना नहीं। उसने ज़मीन ज्यादा ले ली और इस वंदोवस्त में हमारे आदमियों को खटाने लगा। भादों का दुख चिर-काल रहता है। छटराय की गरदन पर वैठकर कर्ज़ा क्यों दिया इसने ? उसके अँगूठे पर स्याही लगाकर ठप्पा लिया सादे कागज़ पर और उसे वँधुआ वना लिया। नहीं-नहीं, हम ठीक नहीं समझते इसे। हमारा कलेजा पत्थर जैसा भारी हो गया है। पत्थर जैसे गरम हो जाता है। उतना ही गरम छटराय का खून हमारे वदन पर छींटों की शक्ल में गिरा है। वह खून अव भी फफलों की तरह हमारे वदन पर है। फिर इतनी वातें क्यों ? वातें मुँह से निकलती हैं। मुँह रहता है सिर में और सिर कहाँ ? कंधे पर ! वस, सिर उतार दो, झंझट ख़त्म।

यही वातें दिकू संथालों की आँखों में से पढ़ रहा था। उसकी छाती धड़-धड़ कर रही थी, जैसे वलि के वकरे की छाती धड़कती है। उसने सिर झुकाया। वोला, "तुम जो कहोगे, वही होगा। वैल मर गया है, पाप होगा। प्रायश्चित तो करना ही पड़ेगा।"

"वैल मरने पर प्रायश्चित है ?"

"हाँ, होता है !"

"और छटराय जो मर गया है...?"

"उसकी पत्नी को एक अंजुरी रुपया दूंगा ।"

माझी ने निश्चल कठोर दृष्टि से दिकू को देखा। बोला, "जा, गाड़ी जोड़ ले। अपने बैल ले, धान ले, सब-कुछ ले और यहाँ से चला जा। तेरा घर हम जला देंगे।"

इसी तरह संथालों के हुक्म पर वह दिकू जमींदार चला गया, गांव छोड़कर। बाक़ी रह गयी पके धान की सुगंध। महनि की माँ बहुत दिनों तक पत्थर की मूर्ति की तरह बैठी रही। फिर धीरे-धीरे काम-काज करने लगी। बकरी-गाय संभालो, साग-सब्ज़ी उगाओ। जो चला गया, उसे लेकर रोते रहने से भी क्या फ़ायदा है?

बूढ़ों ने कहा है, 'रास्ते में रोना नहीं, दूसरों को कष्ट होगा।' तभी माँ रोती नहीं। वह सिर्फ़ 'हैया-हो हैया-हो' की आवाज़ सुनती थी—क्योंकि सर्वनाश उसी का हुआ था। दिकू की पत्नी के बारे में भी वह सोचती थी। उसके पेट में भी संतान थी। पता नहीं, किस देश में जाकर वह बच्चा पैदा करेगी!

ऐसी ही बातें सोचते-सोचते एक दिन वह चैत की खड़ी धूप में नदी के किनारे नहाने गयी। वहीं उसे दर्द शुरू हुआ। फिर प्रसव हुआ। औरतों ने गाँव में खबर भिजवा दी। सभी उसे उठाकर घर ले आये। खूबसूरत लड़की, काले बालों से सिर ढँका हुआ था। उसका नाम दादी के नाम पर रखा गया शुकुमनि। पर माँ उसे बुलाती म-ह-नि। वही नाम रह गया। सभी उससे कहते, "महनि, तेरी क़िस्मत से बँधुआगिरी ख़त्म करने के लिए ही तेरे बाप ने जान दी।"

महनि कुछ भी नहीं समझती। उसके बाप और माँ का घर अब बिजुबन है। बाप जहाँ मरा था, वहाँ जंगल-झाड़ खड़े हैं। महनि और दूसरी लड़कियाँ वहाँ से आम-जामुन बटोरती हैं। बाप के मरने के बाद से ही माँ एक अलग ज़मीन में साग-सब्ज़ी उगाती है। माझी ने यही व्यवस्था की है। महनि माँ के साथ हाट में जाती है। वहीं भुमर से उसकी मुलाक़ात हुई। भुमर के सिर पर लकड़ियों का बोझा था, महनि के सिर पर सरसों का डोल! हाट में कई बार मिलने के बाद एक दिन भुमर बोला, "एक बात है।"

"क्या ?"

"कह दें तभी जाना।"

"क्या बात है ?"

"त्रिअर बोल: क रेयान ना ई पूतूंग रेयान ?"

"इसका मतलब ?"

"तू खुद आयेगी मेरे घर या ज़बरदस्ती सिंदूर डाल दूँ ? यही बात है।"

महनि हँसती रही। "खुद आऊँगी तेरे घर ? ईपूतूत् रेयान करेगा नहीं तो ? अरे जबरदस्ती सिंदूर डालेगा तो गाँव के सारे लोग तुझे पीटेंगे।"

"पीटें ! तू अगर ऐसे न मिले तो मार खाकर मर भी जाऊँ तो भी अच्छा।" हाय रे, सोलह साल की उम्र ! हाय रे, झुमर की झलमलाती हँसी !

महनि बोली, "तेरे यहाँ कौन-कौन हैं, मैं नहीं जानती।"

"मेरी माँ है।"

"बाप नहीं ?"

"नहीं।"

"मेरी भी माँ ही है।"

"राय बारिच (बिचौलिया) पकड़ ले।"

बिचौलिया आया महनि की माँ के पास। "हमारा लड़का है। बोलो, तुम्हारे घर आने का रास्ता खुला है ? हम जानते हैं कि खुला है।"

"हाँ, है।"

फिर गाँव के जगमाझी के घर वे लड़की देखने आये। आने के समय रास्ते पर बाघ के पंजों के निशान थे, लड़कियाँ पानी ला रही थीं, सभी शुभ शकुन थे।

जगमाझी बोला, "औरतो ! बाहर आओ। अनेक गाँवों से कुटुम्बी आये हैं, ज़रा पानी-वानी पिलाओ।"

पानी लाने का एक नियम है। सब जानते हैं कि जिस लड़की को देखने आये हैं, उसे बीच में रखकर तीन लड़कियाँ पानी लेकर आयेंगी। देखो

अच्छी तरह देख लो। ऐसे ही सगुन हुआ और शुभाशुभ विचार हुआ। महनि की माँ का कोई नहीं था, इसीलिए सारा गाँव उसका था। सारा गाँव खड़ा हो गया और उसकी मदद की। माझी, पारानिक, जगमाझी, जग पारानिक सभी में जितनी सामर्थ्य थी, उससे ज़्यादा किया। क्यों न करते ? छटराय की मृत्यु उनके सीने में गड़-सी गयी है। ऐसा आदमी था छटराय, जिसके कारण देश से दिकू निष्कासित हो गये। देखो ! ध्यान से धान बोओ। यदि विष-कीड़े का एक बीज भी खेत में पक्षियों द्वारा पड़ गया तो तमाम खेत विष-कीड़े से भर जायेगा। जितना उखाड़ोगे, उसी के बीज बिखर कर फैलते चले जायेंगे। विष-कीड़ा देखते ही उखाड़ कर फेंक दो।

एक दिकू को अगर रहने का ठौर दे दो तो बाद में वहाँ सिर्फ़ दिकू ही रहेंगे। संथाल ग़ायब हो जायेंगे। भागलपुर के वीर संथाल बाबा तिलका माझी का नाम नहीं जानते तुम? उन्होंने एक हाथ से अंगरेज़, दूसरे हाथ से दिकूओं को उखाड़ कर फेंक दिया था। उनका गीत नहीं याद तुम्हें ?

महनि और भुमर की शादी हुई। पर हाय ! महनि इत्यादि को यह नहीं पता था कि अंगरेज़ सरकार कैसे भी करके संथाल परगना में बंगाली, भुटिया, बिहारी, मारवाड़ी इत्यादि विभिन्न जातियों के विष-कीड़े बिछा रही है। उन्हें कुछ नहीं पता था। महनि ने भुमर की माँ से तेल-हल्दी और सिंदूर लिया। बड़े आनन्द से उसने माझी के सामने स्वीकार किया कि यह आदमी धर्म से मेरा पति है। यह मेहनत करके जब घर आयेगा तो उसे पानी दूँगी, खाना दूंगी। ससुर के घर सभी को पानी दूंगी, सेवा करूँगी। यह सब कहते-कहते महनि जैसे फूल कर पलाश की डाली हो गयी थी। सुख का भार सहा नहीं जा रहा था। प्रेम-सागर में वह गोते लगा रही थी, उछल रही थी।

बड़ा सुख, बड़ा ही प्रेम। भुमर एक फल तोड़ता तो उसे आधा ज़रूर देता। पहली संतान लड़की हुई। दादी का नाम था सोमनि। महनि ने कहा, "इसे सब सोमनि कहकर बुलायेंगे। मुझे किसी ने 'महनि' छोड़ दूसरे नाम से नहीं बुलाया, इसी से शुकुमनि नाम लोग भूल गये।"

सोमनि के पैदा होने के बाद एक कांड हुआ ! छह बरस महनि का

घर खाली रहा। पता नहीं, संथालों के गाँवों में क्या-कुछ घटता रहता है! वारहेट में रात को रुकना नहीं। वहाँ दिकू रहते हैं। वे छल से तुम्हें बुला लेंगे, दारू पिलायेंगे और तुम्हारी ज़मीन ले लेंगे। तुम नशे में धुत्त अँगूठा टीप दोगे—ऐसा बुर्ज़ुग कह गये है। बूढ़ों की हड्डियों में अपार ज्ञान होता है। यह वात संथाल भूलते जा रहे थे। गाँव की हाटों में क्या इतनी भीड होती है ? वारहेट अव संथाल परगना का मुकुट है। कितनी ही दुकानें हैं यहाँ। हाट के दिन भालू-वंदर के नाच होते हैं, साँपों का खेल दिखाया जाता है। विदेशी जादूगर तुम्हें भौंचक्का करके छोड़ देता है। इस आम की गुठली से पेड़ वना, डाल-डाल पर पत्ते-आम झूल रहे हैं।

संथालों को वहकाने के लिए काँच की चूड़ियाँ, रंगीन कंघे, आईना और कौड़ियों या पीतल के मनकों की मालाएँ, चमकती छुरियाँ, गले में पहनने के लिए रंगीन धागे में गुँथी पीतल या जस्ते की नक़ली मोहरें।

इन सभी चीज़ों के भुलावे में आकर दूसरों के साथ भुमर भी हरेक हाट से फ़सल बेचने के वाद, अनेकों नक़ली चीजें ख़रीद कर घर लौटता था। लेकिन क्या ख़ाली हाथ घर लौटे ? जिससे उसने चूड़ी-वालियाँ ख़रीदी थीं उसने कहा था, "हम सव जमींदार के आदमी हैं। तू और कहाँ-कहाँ भटकेगा ? तिरपुरी साहा वावू की आढ़त है यह। वह हमारे ज़मींदार हैं। वे अभी उधार दे देंगे। पर वेटा, अगर भला चाहते हो तो भाग जाओ ! उधार लेकर क्या साँप का जूठा खाओगे ? ऐसा कोई गुणी नहीं है जो यह ज़हर उतार सके ! सो वेटा ! कभी उधार मत लेना। फिर तुम हो जंगलिया, सीधे-साधे आदमी। मेरा काम है, मैं तुम्हें लुभाऊँ और तुम हो वेवकूफ़। चुपचाप आँखें वन्द करके भाग क्यों नहीं जाते यहाँ से ?"

यह सुनकर एक नाटा आदमी आगे आया। वोला, "तुम ऐसा भी कर सकते हो। मालिक की चीजों से दुकान चलाते हो! वे संथालों को ही पैसा देने के लिए वैठे हैं। इन्हें जाने क्यों नहीं देता? उनकी वात मत सुनना, संथालों! रुपये लेना है तो ले लो। मालिक दया के सागर हैं।"

तिरपुरी वावू की गद्दी पर आकर भुमर इत्यादि सभी चांदी की चवन्नियों की सूरत में दो-दो रुपये उधार लेते और सादे कागज पर अंगूठा

टीप देते। उन रुपयों को देखकर महनि फूल जाती। भुमर को भात देती, हँड़िया देती। कहती, "मुर्गी खरीद, बकरी ख़रीद। मैं भी ज़रा संसार बसा लूं।"

छह वर्ष के बाद लड़का पैदा हुआ। बूढ़ी दाई को कपड़े-धान और थाला दिये गये। दूसरी संतान अगर लड़का हो तो उसके नामकरण पर उसका नाम नाना के नाम पर रखा जाता है। इस लड़के का नाम छटराय रखा गया। समाज का यही नियम था। लेकिन महनि की छाती में धुकधुकी तेज़ हो गयी।

सास बोली, "मुंह क्यों सूखा है रे?"

"माँ! लड़के का नाम सुनकर छाती काँप जाती है।"

"क्यों रे?"

"मेरे बाप का नाम है।"

"तो क्या हुआ?"

"बँधुआ था वह!"

"बँधुआ वे ही होते हैं जो दिकूओं की बात सुन उनके भुलावे में आकर सादे कागज़ पर अँगूठा टीप देते हैं।"

"माँ, कोई ऐसा देश नहीं जहाँ दिकू न हों?"

"महनि! संथाल न हों ऐसे देश तो हैं, पर दिकू न हों ऐसा देश तो शायद नहीं ही है।"

"होता तो हम वहीं चले जाते।"

"ऐसा देश है ही नहीं। अब यह ही देख लो। हम जानते हैं कि हम अपनी मर्ज़ी से ज़िंदा हैं, पर ख़ज़ाने के बंदोबस्त में हम नलपुर के ज़मींदार की प्रजा हैं।"

"बड़ी चिंता होती है।"

महनि की सास सीधी औरत है। माझी ने उसे बुलाया और उससे कहा, "भुमर की माँ! तेरे नाती हुआ, खूब भात-हँड़िया खिलाया गाँव-भर को। पर भुमर हाट में जाकर तिरपुरी साहा बाबू के पास सादे क़ागज़ पर ठप्पा लगा कर रुपये ले आया है। ऐसा कुकर्म चार और लोगों ने किया है। तू नहीं जानती है क्या?"

महनि इस बात को सुनकर सूखे पत्ते की तरह काँप कर रोने लगी।

"क्या हुआ, महनि ?"

"बारहेट के तिरपुरी साहा का नाम मैंने माँ के मुँह से कई बार सुना है। उसी ने तो मेरे बाप से दस्तख़त करवाये थे और उसे बँधुआ बना लिया था। तभी तो वह गाँव छोड़कर बारहेट आ गया था।"

माझी बोला, "बच्चे की माँ हो, रोओ मत। मैं जाऊँगा। देखूँ, क्या हो सकता है ?"

माझी ने भुमर और दूसरे लोगों को बड़ा डाँटा-फटकारा। "तू क्या पैरों में बेड़ियाँ पहनेगा ? धान होने पर चलूँगा बारहेट ! हिसाब देखकर उधार साफ़ कर दूँगा। बेटा ! तुम्हें कितना कहा है कि घर की बहू के हाथ में लोहे-लकड़ी के कंगन ही अच्छे। कान में फूल, गले मे फूलों की माला लगा दो। पेड़ों पर फूलों का अकाल है क्या ? तब क्यों दिकूओं के भुलावे में आकर चूड़ी-बाला-माला के फंदे में पड़ते हो ? इस बार बच गये तो फिर कभी यह चीज़ें खरीदने नहीं दूँगा। हाट जाओ। माल बेचो। चले आओ। टुडू लोहे की चीज़ें बनाता है। नमक लाओ। दिकू लोग तो तैयार माल बेचते हैं। समझ में नहीं आता, ऐसा क्यों करते हैं ? तुम खुद गमछा-कपड़े नहीं बुन सकते क्या ? वे हमें आलसी बना देना चाहते हैं। रुपये क्यों लाते हो ? पहले लोग समाज को बाँधने के लिए लेन-देन नहीं करते थे। वह तरीक़ा क्यों छोड़ते हो ?"

भुमर माझी के पैरों पर गिर गया। कहने लगा, "बाबा ! इतनी बातें हमने नहीं सोची थीं। चक-चक चाँद जैसे चाँदी के रुपये देखकर हम अपना आपा भूल गये थे। सादे कागज़ पर अँगूठा टीप दिया और अब पैरों में बेड़ी पड़ गयी हैं। हमें इससे निकाल लो।"

लेकिन वे जाल में से निकल नहीं पाये। तिरपुरी साहा भुमर से बोला, "हाँ, हाँ ! तेरा ससुर मेरे यहाँ काम करता था। अपनी औक़ात नहीं समझी और गाड़ी उठाने लगा था, मर गया ! अपने उस बैल की मृत्यु का शोक मैं अभी भी नहीं भुला पाया हूँ। उनकी जंगली जाति का जंगली निर्णय ! हमें भगा दिया। मेरी पत्नी को गर्भ था। यही वह लड़का है, मदन साहा। तो बेटा लोगो, तुम पर रुपये तो बहुत हो गये हैं—असल और

सूद मिलाकर। अभी कर्ज़ कुल सोलह रुपये हैं। जो करना चाहो, कर दो।"

"धान लाये हैं, बहुत सारे रुपयों का धान!"

"बहुत रुपये...कितने ?"

"हाट में वज़न किया था। तीन गाड़ी धान है। एक गाड़ी पर कम-से-कम साठ मन होंगे।"

"हाट का वज़न मैं नहीं मानता। मेरा आदमी तौलेगा।"

तिरपुरी के आदमी ने वज़न किया। तीनों गाड़ी मिलाकर सात मन हुए। माझी ने तिरपुरी की तरफ़ देखा। बोला, "धान उठा लो, लड़को!"

"क्यों ? धान लौटा ले जाओगे क्या ?"

"तब क्या छोड़ जायें ? तुम्हारे यहाँ बीस गाड़ी धान लाने पर भी तुम्हारा आदमी बोलेगा दस मन। कर्ज़ा ज्यों का त्यों रहेगा। भूखे मरेंगे क्या ? तू जो कर सकता है कर ले!"

तिरपुरी बोला, "कर्ज बढ़ जायेगा तो ज़मीन चली जायेगी।"

"जायेगी क्यों कहता है ? मैं समझता हूँ कि गयी।"

भुमर लौटते समय बोला, "नलपुर जाऊँगा। हम तो उनकी प्रजा हैं। यह साहा दिकू ज़मीन ले सकेगा ?"

माझी भयानक क्रोध से गरज उठा, "सब कर सकता है। नलपुर के गुमाश्ता और साहा में कितना मेल-जोल है, जानता है ?"

किसी की समझ में नहीं आया, किस तरह तिरपुरी साहा ने नलपुर कचहरी के गुमाश्ते की सहायता से भुमर इत्यादि की ज़मीन हड़पी। उन्हें सिर्फ़ यह पता चला कि उनका नया मालिक है तिरपुरी बाबू। वह खजाना भरता है। बाबू ने भुमर की ज़मीन छीन ली। भुमर के सामने बँधुआगिरी की बेड़ियाँ नाचने लगीं। बँधुआगिरी से संथाल बड़े भयभीत थे। इसके भय से वे घर-बार-विहीन हो जाते हैं। डर के मारे भुमर दूसरा ही व्यक्ति हो गया। वह सिर्फ़ यही रट लगाये था, "यह देस छोड़ो, दूसरे भी देस हैं।"

डरे हुए संथाल को देखकर दिकू समझ जाते हैं कि यह अब बाघ का शिकार है, "दूर देस क्यों जाते हो ? बारहेट से गाड़ी लौटी है। वहाँ काम

करना। अच्छे घर में रहना, खूब खाना, रुपये लेना। रुपये मिलने पर ज़मीन छुड़ा लेना। एक बार खुद वहाँ जाकर देख लो, कितना सुख है !"

भयानक रूप से डरा हुआ भुमर किस तरह वहाँ पहुँच गया, किसी को पता नहीं चला। महनि से भी कुछ नहीं कह कर गया। कुदाल, खुरपी और खेती का दूसरा सामान देख उसकी आँखें लाल हो जाती थीं। ज़मीन गयी तो इन्हें भी क्यों ले नहीं जाता वह ? माँ, महनि समझाती, "कहीं और जाकर ज़मीन ले लेंगे।" पर भुमर नहीं समझता। एक दिन वह माँ, और महनि के लिए कपड़े, तमाखू और बच्चों के लिए सत्तू के लड्डू लाया। ठेकेदार ने पैसे दिये थे। दूसरे दिन वह हाट गया। उसका जाना आख़िरी जाना हुआ। वह फिर नहीं लौटा। माझी ने बहुत तलाश की। लेकिन अगर किसी संथाल के पैरों के निशान दिखायी दें और वे घिसटते हुए हों तो यही पता चलता है कि वह आदमी जाना नहीं चाहता था, पर बड़े दुख से गया है। ठेकेदारों के बुलाने पर जब संथाल चला जाता है तो उसके अन्तर में गूँजता रहता है. औरत-मर्दों के दुख वाला रंग-नाच का गीत—

हाय रे ! काँस-फूल फूटे थे,
लड़की हुई थी,
हाय रे ! पलाश-फूल फूटे थे
लड़का हुआ था ।

उस संथाल के दुख से वन में पंछी रोते हैं, बाघ सिर झुकाकर रास्ता छोड़ देता है, साँप फन झुका लेता है। सबेरे दीख पड़ते हैं, पैरों के निशान अगल-बगल—दूध जैसे शिउली फूल दुख से मिट्टी में मिल गये।

महनि और भुमर की माँ गूँगी हो गयीं। 'हाय भुमर ! हाय भुमर !' रटकर बूढ़ी दुख से गली जा रही थी। इसी तरह मर गयी एक दिन वह। महनि से माझी ने कहा, "चल बेटी, भगनाडिही ले जाता हूँ। गाँव-माझी चुनार मुर्मू बड़ा भला आदमी है। उसके चार बेटे हैं—सिद्दू, कानू, चाँद और भैरव। भुमर को गये छह वर्ष हो गये। लड़की बड़ी हो गयी है। लड़की की शादी हो जाये तो एक आसरा हो जायेगा।"

"वह अगर लौट आया तो ?"

"उसे भी वहीं भेज देंगे। हाय रे बेटी ! भुमर की याद में चकवे की

तरह सूख-सूख कर तुम्हारी क्या दशा हो गयी है ! और बेटी, तिरपुरी का बेटा मोहन इस घर को भी दखल करेगा। इसलिए भगनाडिही ही ठीक रहेगा।"

चुनार मुर्मू ने सारी बातें सुनीं। सिद्दू और कानू से बोला, "महनि मेरी बहन हुई। सोमनि तुम्हारी बहन। छुटराय हुआ भाई। घर बना दो। लड़की की शादी करो। महनि ! शरीर में शक्ति है, घर में टाँगी है, वन में जंगल हैं। लकड़ी ले आ, हाट में बेच। कंदमूल यहाँ अपार हैं। धान यहाँ बहुत हैं, उसे कूटो-छाँटो। छटराय ज़रा बड़ा हो ले, तब ज़मीन ले देंगे। महनि ! संथाल-समाज में कोई अनाथ नहीं होता।"

सिद्दू-कानू ने फटाफट उसका घर बना दिया। उनकी माँ ने घर लीप दिया। नयी हँड़िया और कलसा ले आयी। कुछ ही समय में महनि भगना-डिही गाँव की एक सदस्य हो गयी। सवेरे धूप में अमड़ा पेड़ के पत्ते, सर-दियों की शाम को लकड़ी की आँच, हेमन्त में नये चावल की गंध -- सब उसे भुमर की याद दिलाते थे। महनि कैसे लोगों को भुमर के बारे में बताती ? कहाँ, किस देस को गया ? शायद नया संसार बसा लिया हो या बहुत दूर चला गया हो। रास्ता भूल गया हो और लौट नहीं पाया हो। महनि क्या जाने ? "दीदी ! धान फटक दूं, चरखे पर कपास कात दूं, रुई धुन दूं, धागे लपेट कर रख दूं ? हाँ दीदी, सब काम जानती हूँ। अगर मैं नहीं जानूं तो सोमनि कैसे सीखेगी ? मेरी सास कह गयी है—महनि ! बेटी ! हाथ न रुके कभी। तुम्हारे लड़के कपड़े बुनते हैं न ?"

माझी के चार बेटे हैं। पर सिद्दू-कानू जैसे नहीं। आदेश है कि भगना-डिही से कोई कुवाँरी लड़की बारहेट के हाट में न जाये। दिकू लोग आँखें फाड़कर देखते हैं। भादों खींचतान का महीना है। भादों में दिकू महाजन हाट में आ जाता है। बोलता है, "धान ले आओ, रुपये ले जाओ, सोचते क्या हो ? मैं नहीं हूँ क्या ? तुम क्या अकेले हो ! लाओ रे, लाओ रे।"

बस जीवन में दिकू घुस गया तो फिर जीवन जल जायेगा।

"हाँ, तुम पूछोगे कि तब क्या करें ? बगैर खाये मर जायें क्या ? हम यह नहीं कहते। चुनार मुर्मू के बेटे हैं हम। बाबा गाँव का माझी है, इसलिए नियम के अनुसार आधी ज़मीन उसकी होती है। पर हमने तो बाक़ी ज़मीन

दूसरों की तरह ही हासिल की है। भादों से कातिक के बीच धान की कोठारी हम भरेंगे। परानिक, जग-माझी और जग-परानिक को भी देंगे। कोई भी धान-दलिया देकर जो दाम दे सके, चुका दे। जो न चुका सके तो वह भी चलेगा। जो न दे सके, मत दे ! अगर चाहे तो कुछ दिन हमारे साथ काम में हाथ बँटा दे, हमारी सहायता करे। दिकुओं के हाथ बँधुआ मत बनना कभी। दिकू एक मन धान देकर दस मन वसूल लेगा। कहेगा—बेटा राम! सूद के नियम से ले रहा हूँ। तुम जंगली हो, क्या समझोगे ?"

चुनार माझी के चारों लड़के सभी को इसी तरह भरोसा दिलाते रहते हैं, जैसे बाँध से पानी रोक रहे हो। बारहेट से ज़्यादा दूर नहीं है भगनाडिही। वहाँ क्या दिकुओं के हाथ रुक सकते थे ? पानी भीतर घुस आया और धड़ाधड़ उन्होंने संथालों की ज़मीन, धान, चावल, सरसों—सब हड़पना शुरू कर दिया। भादों की भूख और कातिक का कष्ट दूर होते-होते कई लोग उनके बँधुआ हो गये। ऐसा बहाव कि पानी महनि के घर में भी घुस गया। ऐसी दुख-भरी कहानी कहते वक़्त पत्थरों के सीने फट जाते हैं, नदी का पानी सूख जाता है, पेड़ के पत्ते झर जाते हैं और पके धान में कीड़े लग जाते हैं। जग-माझी और सिदू-कानू वगैरह चार भाइयों की चेष्टा से सोमनि की शादी हुई। लड़का अच्छा है। ज़मीन-जायदाद, हल-बैल भी हैं। सास बड़ी सीधी है। तब क्या अनाथ लड़की के भाग्य में सारे सुख होते हैं ? महनि ने तो माँ से भली सास पायी थी ! उसे कौन-सा सुख मिला ? "रो मत, बेटी! कोयल-सा काला, भैंसे सा जवान वर मिला है। क़िस्मत में रहा तो चिटा-पोआती धान होगा। तू मेरी समझदार बेटी है। माँ को छोड़ते हुए रो-रो कर मरती क्यों है? हँस-हँस कर जा। तुम्हारा घर-कुटुम्ब बस गया, मुझे भी शक्ति मिली।"

तीन रुपये आये महनि के पास कन्यादान के। वर-पक्ष को कुछ भी नहीं दिया गया। गाँव में बकरी ख़रीदी गयी। छटराय बड़ा दुष्ट था। लेकिन दीदी की शादी होते ही शांत हो गया। समझदार हो गया। माँ बकरी पालती है और वह उसके बच्चों को बड़ा करके बेचता है।

वह गाँव के लड़कों के साथ गाय चराता है। तीर-धनुष, गुलेल-गोली उसके साथी हैं। नाच-गान में वह सबसे आगे रहता है। सोलह बरस का

होते-होते वह एकदम शाल-पेड़ जैसा हो गया है। हाट में भी जाता है। छटराय के ऊपर साहा की नज़र पड़ी मदन साहा की। और! जिन दिनों सिदू-कानू गांव में नहीं थे, जब भादों की भयानक बारिशों में फ़सल बरबाद हो गयी, जब भूख का हाहाकार मचा था—तभी भूख की तड़प से बैचेन होकर महनि के बेटे ने और संथालों के साथ मिलकर मदन से उधार पर धान लिया।

छटराय सिर्फ़ एक बात कहता है, "कंदमूल ढूंढ़-ढूंढ़ कर क्यों मरें? कौन कहता है, धान नहीं है? जाकर देखो, मदन साहा के गोले में कितना धान है! धान नहीं है, कौन कहता है?"

"वह महाजन का धान है।"

"धान तो है!"

"वह धान घर में लाये तो वह बँधुआ बना लेगा।"

"अरे! बँधुआ बनाना इतना आसान है?"

"तू मदन को नहीं जानता, छटराय? जब वह मां के पेट में था तो मैं भी माँ के पेट में था। उसके बाप ने मेरे बाप को बँधुआ बना कर रखा था। बँधुआगिरी से छूटने के लिए मेरे बाप ने असंभव करने की ठानी और अपनी जान गंवा बैठा। फिर मदन के बाप को गाँव से भगा दिया गया।"

"तो क्या। वह तो पैदा हो गया न!"

"हो गया? यह खेल क्या कभी खत्म होता है? मदन का बाप और मदन—दोनों इस बात को नहीं भूले हैं। उसी ने तुम्हारे बाप से देस छुड़वाया था। उसने गाँव छोड़ा और इसी कारण वह छटराय का वंश उखाड़ने पर तुला है। सौ लड़के धान ले लें और बँधुआ-बेगारी करें—वह यही चाहता है।"

"माँ, उसके घर में इतना धान है। इतने धान रहते हम भूखे मरें!"

"माझी ने धान दिया तो है।"

"जितना था, उतना दे दिया।"

"न रहता तो कैसे देता?"

"मैं भात खाऊँगा। इतनी बातें मैं नहीं जानता।"

"सिदू-कानू आ जायें ज़रा। वे कोई रास्त निकालेंगे।"

भूख की ज़्वाला बड़ी भयानक होती है। अच्छा भला आदमी पागल हो जाता है। शांत लड़का हठी हो जाता है। छटराय तभी मदन साहा के पास पहुँचा।

कहने लगा "धान दे बाबू ! फ़सल होने पर चुका दूँगा।"

मदन के हाथों में चाँद आ गया। बारहेट में, 1850 में गद्दी जमा कर बैठने का फल उसे मिल गया। छटराय के बाप को उसने देस से बाहर किया और अब उसको भी बँधुआ बना लिया। छटराय के कारण उसके बाप को गाँव से निकाला गया था। इस अपमान को मन में लिये हुए तिरपुरी स्वर्ग सिधार गया था। इसे अगर वह बँधुआ बना ले तो वह छटराय के पैर में बेड़ियाँ डाल देगा।

"धान नहीं देगा, बाबू ?"

"सूद क्या देगा ? चुकायेगा कैसे ?"

"तुम बोलो।"

"किस पर धान दूं ?"

"तुम कहो।"

"ज़मीन है ? तू महनि का बेटा है न ! ज़मीन कहाँ से आयी तेरे पास? अरे ! यह तो तेरे चेहरे पर लिखा है !"

"बाबू ! सिदू मुर्मू इस बार हमें ज़मीन देगा। अभी तक मैं जवान नहीं हुआ था, लेकिन वह अब देगा।"

"वह ज़मीन हवा में है।"

"तो नहीं देगा ?"

"खट कर चुकायेगा ?"

"हाँ।"

मदन चुपचाप शांत भाव से उसकी तरफ़ देखता रहा। संथालों का एक गांव था। सभी के पास ज़मीन थी। ज़मीन पर धान होता था। छटराय मर गया, तिरपुरी को भगा दिया गया। सारी ज़मीन, सारा धान, सब कामिया-कमेरे, बँधुआ-बेगार छोड़कर आना पड़ा। यह क्या कम अफ़सोस की बात है ? इसे बँधुआ बनाकर कुछ तो शांति मिलेगी। उस गाँव

मदन को पता नहीं। उस समय वह माँ के पेट में था। लेकिन वह आग, वह ग्लानि तिरपुरी उसके खून में बो गया है।

"सिदू मुर्मू ज़मीन देगा !" भगनाडिही के माझी के बेटे सिदू और कानू विष-खोपड़े हैं। संथालों के ऊपर दिकुओं ने क्या-क्या अत्याचार किया, यह देखने भागे आते हैं वे। इसी बारहेट की हाट में उन्होंने संथालों को बचाने की चेष्टा भी की है। बातों-बातों में वे कहते हैं, "देख दिकू ! धान जब देता है तो एक डोल देकर कहता है कि एक मन हुआ, पर वापसी के समय दस डोल देने पर भी तेरा एक मन ही नहीं होता। यह कैसा हिसाब है ?"

"वह संथाल ऐसा कहता है ! उसकी बातें मत करो, सिदू !"

उसे कितनी ही गालियाँ देता है वह। कहता है, "बन में तीर से बाघ मार सकते हो। दिकू को नहीं मार सकते ? तुम्हें बचाने की सामर्थ्य किसी में नहीं है।" बड़ा विष-खोपड़ा है वह। मदन से कहता है, "तू बेईमान, साहेब बेईमान। तेरे ज़मींदार, पुलिस — सब बेईमान हैं।"

मदन कहता है, "धान लेगा ?"

"लूँगा।"

"तो अँगूठा टीप। जितने दिन तू नहीं लौटायेगा, तू मेरी ज़मीन पर खटेगा।"

छटराय ने अँगूठा टीप दिया। "दो डोल धान दे, बाबू ! दाम चार रुपये हुए। मैं चार महीने में चुका दूँगा।"

हाट वालों की गाड़ी पर बैठकर वह वापस लौटा। उस बारिश-भरी शाम को महनि का कलेजा चीर देने वाला आर्तनाद सुनायी दिया। भागे आये सिदू और कानू। आज ही लौटे हैं वे। वे बहुत दूर गये थे। कितने ही गाँव घूम कर आये हैं। दिकुओं के जुल्म से टूटे कितने ही संथालों का रोना उनके सीने में जमा है। उन्हीं की बातें वे माँ-बाप को बता रहे थे। आत्मीय स्वजनों की बातें। रोना सुनते ही भागे आये। "क्यों क्या हुआ ? कोई मर गया क्या ? घर में तो बस महनि और छटराय हैं। किसे क्या हुआ ?"

बारिश से भीगी जगह में लोगों की भीड़ जमा हो गयी। कितने ... जमा हो गये हैं रे ! "देख महनि ! इतने दुख में भी तुम्हारे साथ

तुम्हारा समाज है। संथाल-समाज किसी को भी बाहर नहीं फेंकता। सब संथाल एक-दूसरे की देख-भाल करते हैं। साथ-साथ रहते हैं उसी हिहिड़ि-पिड़ि के द्वीप देश की तरह। बुजुर्ग कह गये हैं कि जब तक संथाल एक-दूसरे का ख़याल रखते रहेंगे, तब तक ठीक रहेगा। जिस दिन संथाल दिकू जैसे हो जायेंगे, अर्थात धनी धनी को देखेंगे और ग़रीब ग़रीब को, जिस दिन एक घर में तीन चूल्हे जलेंगे और जिस दिन एक थाली भात में लोग हिस्सा करके खायेंगे तो समझ लेना कि संथालों के दुर्दिन आ गये हैं।"

1850 में महनि रो रही है, इस बारिश-भरी शाम में। तभी संथाल आये थे। सिदू-कानू बोले, "अँधेरे में साँप ने काट लिया है क्या? चलो देखें।"

नहीं रे! साँप ने नहीं काटा, लेकिन किसी ने काटा ज़रूर है। ज़हर से अंग नहीं जल रहे, पर सब-कुछ जल रहा है। ऐसे ज़हर को उतारना किसके वश का है। भगनाडिहि के लोगों ने देखा कि महनि के दरवाज़े पर दो डोल धान रखा है। आँगन में धूल में महनि लोट रही है। सबको आते देखकर वह और ज़ोर से रोने लगी।

"हाय रे! सिदू-कानू! तुम सब कुछ घंटे पहले क्यों नहीं आ गये? छटराय ने मेरी बात नहीं मानी। पेट की ज्वाला नहीं सह सका। बारहेट जाकर मदन साहा के यहाँ सफ़ेद कागज पर अँगूठा टीप कर धान ले आया है! बंधुआ बनना स्वीकार किया है इसने।"

सब हतप्रभ रह गये। सबकी आँखें अँधेरे को चीर कर छटराय को ढूँढ़ने लगीं। वह वहीं एक सहिजन के पेड़ से लगा खड़ा था, जैसे पेड़ में घुस जाना चाहता हो। इस अँधेरे में भी उसका बदन और चेहरा स्पष्ट चमक रहे थे।

"छटराय, यहाँ आ!"

महनि ने रोना बंद कर दिया। भगनाडिहि के चुनार मुर्मू का लड़का सिदू मुर्मू जब इतने तीखे क्रुद्ध स्वर में बोलता है तो मामला बहुत संगीन समझा जाना चाहिए। छटराय आगे आया। दोनों हाथों को लटकाये चुप-चाप खड़ा रहा। अगर मारना चाहते हो तो मारो। उसकी मुद्रा कुछ ऐसी ही थी।

सिदू ने पूछा, "तूने ऐसा काम क्यों किया? कातिक से भादो तक इस

तरह का कष्ट तो चलता रहता है। बारिश में दुख तो होता है। फ़सल चढ़ने के बाद बारिश होने पर कष्ट ज़्यादा होता है। हम तो संथाल हैं! गाँव-गाँव देख कर आये हैं। सब जगह फ़सलें जल गयी हैं। लोग बारिश में मर रहे हैं। जंगल में कंदमूल और पत्तों के लिए भी हाहाकार मचा है। लेकिन तू बँधुआ बनने के लिए कागज़ पर टीप देने क्यों गया था?"

"भूख की ज्वाला नहीं सह सका।"

"भूख क्या तेरी अकेली है? माझी, परानिक, जग-माझी जिसके पास जो था, उसने वह लुटा दिया। वे भी अब जंगलों में घूम रहे हैं।"

"भूख नहीं सह सका।"

सिद्दू सिर हिलाता रहा। "हाय रे लौंडे, तुझे क्या समझाऊँ! तुम्हारे लिए मदन साहा का हिसाब अलग होता है। अकसर वह गाय, बकरी और ज़मीन लेकर छोड़ देता है, पर तुझे वह सीकड़ से बाँधेगा। तेरा नाम छटराय है, तेरे नाना का नाम भी यही था। तेरे नाना के कारण मदन के बाप को घर छोड़ना पड़ा था। इसका गुस्सा तिरपुरी को था, मदन को भी है। छटराय का तो कुछ कर नहीं पाया, तुझसे करेगा सारे हिसाब! हाय रे लड़के, यह तूने क्या किया?"

कानू ने महनि को सांत्वना देते हुए कहा, "दीदी! जो हुआ सो हुआ। धान उठाओ। लड़के को खाने के लिए दो। मैं भाग्य को नहीं मानता था, लेकिन तुम्हें देख कर मानना पड़ता है। गाँव में कुछ दिनों के लिए नहीं रहा, तभी यह विपत्ति आ गयी। उठ दीदी!"

महनि उठी। उसने अपने बाल बाँधे। गहरी साँस ली और फिर सख़्त हो गयी। खुद को समझाया और बोली, "उठती हूँ।"

दूसरे दिन से कोई शिकार का मांस, कोई कंदमूल—जो जिसके पास होता—दे जाता था। छटराय को कितने दिन बँधुआ रखेगा मदन साहा? वह आयेगा और ले जायेगा पकड़कर किसी दिन। इस बार भादो में हमारी अवस्था बड़ी ख़राब है! मदन के पास तो खेत और ज़मीनें हैं। वह तो धान बोयेगा, कुर्थी बोयेगा। कुआर में सरसों बोयेगा। साँप की तरह वह चूहों के बिलों को दख़ल कर लेगा। खुद तो बिल खोद नहीं सकता वह! इसी कुशलता से मक्ष संथालों की ज़मीन दख़ल कर लेता है। खुद ज़मीन

तैयार नहीं करता। "महनि ! मछली ले लो ! बच्चों ने पकड़ी है। माँ-बेटा खा लेना।"

छटराय डर के मारे काँपता रहता है। माँ की छाया बनकर घूमता रहता है। महनि ने एक बार कहा, "बाप भाग गया था, तू भी चला जा।" फिर बोली, "नहीं नहीं ! कभी मत जाना ! सिदू-कानू हैं। कोई जुगत लगाकर तुझे वापस ले आयेंगे। हाय ! यदि छटराय नाम न रखती तो ठीक रहता ! लेकिन हमारे समाज का यही नियम है। मैं क्या करूँ ? मदन साहा अब छोड़ेगा नहीं।"

छटराय काँपता फिरता है। मदन का गाँव लालडिहि है और यह है भगनाडिही। बीच में बहती है गोमानी नदी। भादो में गोयानी गरजती हुई बहती है। मदन साहा आयेगा जरूर। गोयानी पार न कर सका तो नहीं आयेगा। पानी में भीगती हुई वह आयी।

"ओ माझी ! मदन साहा को पहचाना है ? वह अगर नदी पार करके आने की कोशिश करे तो मत आने देना। वह मेरे छटराय को बँधुआ बना कर लालडिही ले जायेगा।" फिर भीगती हुई वापस चली गयी। कितने पत्ते हैं महनि की छाती पर, सिर पर ! भादो का जल टपटप गिरता जाता है।

धीरे-धीरे भादो का जल पत्तों पर से सूखने लगा। आश्विन में दिकुओं के घर बाजा बजने लगा। मूर्ति बैठी, पूजा हुई। मदनराय छटराय को ले गया। गोयानी के किनारे उसने छटराय को तीर की तरह पकड़ा और अपने साथ खींचते हुए ले गया। महनि पर जैसे आकाश टूट पड़ा। "छटराय !" इस आर्त्तनाद से पहाड़ों के कलेजे दहल गये।

सिदू बोला, "आदमियों से बेगार कराये, बँधुआ बनाये, ऐसा कोई क़ानून नहीं है।"

कानू बोला, "केवल कहने ही से क्या होगा ?"

चांद बोला, "अकेला छटराय ही है क्या ? तमाम संथाल-समाज को दिकुओं ने बंधक बना रखा है। यह नहीं दीखता ?"

भैरव ने कहा, "क़ानून क्या है—वकील और मुहर्रिर जानते हैं, पर हमें नहीं बताते।"

सिदू बोला, "नहीं जानने देना चाहते, इसीलिए तो हमें पढ़ने भी नहीं देते।"

कानू ने कहा, "दादा, इतने लोग बंधुआ हैं। दिकू इनकी ज़मीन छीन लेते हैं। यह ज़मींदार लोग बूढ़े वर की जवान वहू की तरह छटपटाते हैं। ऐसा कब तक चल सकता है ?"

इस बात के जवाब में सिदू उठा और हिंस्र भाव से खेत से एक विप-खोपड़ा उखाड़ लाया। "धान के पेड़ मारेगा, मिट्टी में ज़हर डालेगा साला विप उकड़ा। तुम्हें उखाड़ दूंगा ! निर्मूल कर दूंगा, तभी मेरा नाम सिदू मुर्मू !"

कानू ने भाइयों से कहा, "वस भाग चलो। दादा विगड़ रहा है।" सिदू कूदता रहा और बोलता रहा, "आज सिदू-कानू तुम्हें उखाड़ रहे हैं, कल ज़मीदार साहेबों को उखाड़ेंगे, सबको उखाड़ेंगे।"

सिदू बोला, " हाँ ! वचन दिया है ! याद रहे ! याद रहे !! एक अकेला छटराय नहीं है, हज़ार छटराय हैं। अकेली महनि नहीं रोती, हज़ार महनियाँ रोती हैं। वही देखने गया था, देख आया। याद रहे।"

इसके जवाव में कानू गरज कर कूदा और उसने धार वाला नेज़ा चलाया। एक साँप के दो टुकड़े हो गये। कहने लगा, "चाँद, आँखें घर भूल आया है क्या ? इस बार साँपों का उपद्रव बढ़ रहा है।"

सिदू-कानू मन में क्रोध का पहाड़ जुटाते रहे। महनि चुप रही। वह लकड़ी बटोरती है, लकड़ी बेच आती है। गोयानि के पार है लालडिह। लकड़ी लो ! पैसा नहीं चाहिए। सिक्के पर लकड़ी नहीं वेचूंगी। नमक दे दो। अरे, मदन साहा के खेत कहाँ हैं ? यह सब क्या, इतना वड़ा खेत !"

ढूंढ़ते-ढूंढ़ते वह पहुँची लड़के के पास। चैत का महीना है। इनके यहाँ कोई पर्व-त्यौहार नहीं होते। यह संथाल कमेरे हैं। नितांत दुखी। छटराय इस जवानी में कैसा पागल-सा दीखने लगा है। लम्बे-लम्बे बाल हैं। वह चैत में कुदाल के बेंटे बनाता है, गाड़ी का धुरा बनाता है। पैरों में बेड़ियाँ हैं। बेड़ी एक खूंटे से बंधी है। लड़का माँ के पास भाग गया था, इसीलिए साँकल डालनी पड़ी। महनि बेटे के पास बैठ गयी। उसे उसने गुड़-पीठा खिलाया। पानी दिया। माँ चुप, बेटा चुप ! महनि ने बेटे के पीठ पर हाथ

फेरा। छटराय काम करते-करते बोला, "तू जा, माँ !" महनि ने ठंडी साँस भरी। छटराय बोला, "दीदी अच्छी है ?"

"हाँ।"

"उसका पति ?"

"अच्छा है।"

"तू चली जा, माँ ! हाथ में छुरी रखना।"

"रखी है।"

"अगली बार थोड़ा तेल लाना। पूरा बदन सूख गया है।"

"ला दूंगी।"

वह उठ आयी। घर की तरफ़ चलती रही। छत्तीस बरस की उम्र होने पर भी उसका बदन तगड़ा है। शरीर ताजा है। एक दिन मदन उसके सामने खड़ा हो गया था और अधखुली आँखों से उसकी तरफ़ देखता था। मदन को किसी बात से मतलब नहीं। छटराय बेगार है। महनि उसकी माँ है। इससे भी कोई मतलब नहीं उसे। बँधुआ आदमी नहीं होता। महनि बस एक औरत है और पति विदेस में है और उसका शरीर मज़बूत है। छटराय की आँखें धीरे-धीरे तीखी होने लगीं। महनि उसे देखती रही। फिर उसने छप-छप कटारी चलायी और शिमूल के तने के छितेर-बिखेर दिये। फिर वह चुपचाप वहाँ से चली गयी।

मदन सिहर उठा। वह जल्दी-जल्दी वहाँ से चला गया।

गाँव में सिदू-कानू धीरे-धीरे व्यस्त होते जा रहे थे। 1850 से उनकी व्यस्तता शुरू हुई थी। इसी बीच बारहेट में हाट के दिन महनि किसी का रोना सुन कर चौंकी। अरे ! भरत किसकू ! उसके पुराने गाँव का आदमी रो रहा है।

"क्यों रोते हो, भरत ?"

"कौन...महनि ? अरे रोऊँ नहीं तो हसूं ? मदन ने मेरी एक गाड़ी धान और सरसों ले लिया है और कहता है कि एक मन भी नहीं हुआ। मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, क्या पकाऊँ ?"

महनि पलटी। हन-हनाती भागी। चांद मुर्मू हाट में है। उसे ढूंढ़ निकाला।

"चाँद ! मदन साहा भरत किसकू को बँधुआ बनाने वाला है। तुरंत चलो।" मदन को नहीं जानते क्या। संथाल तुलवाये बीस सेर तो वह कहेगा, दस पंद्रह सेर। चाँद, इससे कह कि बाबू एक बार बीस भी बोल दे। संथालों का यह रोना, तुमने सुना नहीं कभी ?"

महनि की आवाज़ पर चाँद भागता आया। उसके साथ थे, सौ लड़के। एक युवक को चाँद ने आगे किया। "मदन साहा बाबू ! इसे ज़रा समझा तो दे। क्या...यह कौन है ? यह आदमी भरत किसकू का अपना आदमी है। इसे ज़रा हिसाब समझा दे। यह हिसाब-किताब करना जानता है। इसे समझाओ। बाबू, भरत ने कितने मन लिये थे ? बी—स सेर। चार बीसा, दो मन। यहाँ कितना है ? तुम्हारे हिसाब से पंद्रह सेर। ठीक है ! तो भरत का हिसाब ही ठीक है। मुझे पंद्रह सेर तू धान कर्ज़ दे दे। मुझे तू पहचानता है ? भगनाडिहि गाँव के माझी चुनार मुर्मू का बेटा हूँ। अब सुन। महाजन अगर है तू, सद्जन भी बन। तो पंद्रह सेर क़र्जा लेगा और पंद्रह सेर ही भरत को देगा। ठीक है, तराज़ू नहीं है तो वैसे ही माप लें। धान उठा लूँ क्या ?"

मदन घबरा गया। चाँद को मज़ा आ रहा था। वह गाड़ी पर चढ़कर खड़ा हो गया। बोला, "संथाल लोगो, सुनो ! हमारे पेट भूख से ऐंठते हैं तो बाबू का मन दया से भर जाता है। बाबू की धान की गाड़ी भरने पर किसकू के दो मन हुए थे। यह धान भरत के दो आदमी मिल कर उठा कर ले गये थे। आज जब भरत ने एक गाड़ी धान लौटाया तो वह पंद्रह सेर हो गया है। ठीक है ! हमें पन्द्रह सेर धान चाहिए और एक गाड़ी ही लेंगे। यह लड़का दिकू-हिसाब, दिकू-वज़न समझता है। यह देख लेगा। क्या हाल है, मदन बाबू ! सौ संथाल तुम्हारे पास से पंद्रह सेर धान कर्ज़ लेंगे। गोला खोल दो। गाड़ी में भर कर माप लेंगे।"

मदन कभी चाँद की तरफ़ देखता, कभी महनि की तरफ़। महनि उसे घूर रही थी। मदन बोला, "चाँद, मुझे तुमसे कोई दुश्मनी नहीं है।"

"भरत के साथ है ?"

"मजाक भी नहीं समझता भरत।"

"मैं भी नहीं समझता।"

"दो मन धान, दो मन सूद।"

"वज़न करो, यह देखेगा।"

पढ़ा-लिखा लड़का आगे आया। धान को तोलने लगा। भरत की गाड़ी में धान चढ़ाया गया। भरत चारों तरफ़ देखने लगा। फिर भागा। उसने महनि के पैर पकड़ लिये।

"महनि। तू भगवान है, तू देवता है। तूने मेरे घर में धान लौटाया। वारहेट से आज तक किसी का धान नहीं लौट पाया।"

चाँद बोला, "नहीं! लौटाया नहीं। सब दिकू ले गये। तभी हम सौ रुपये में पंद्रह सेर चावल खरीदते हैं।"

चाँद संथालों को लेकर हाट से बाहर आया। चलते-चलते बोला, "जब धान हो तो यहाँ मत लाना। धान देने पर भी यह बँधुआ बना लेगा। इसकी बातें मत सुनना। संथाल ज़रा साहस कर लें तो दिकू होश में आ जायेंगे।"

इसी तरह आया 1855 का साल।

संथाल लड़कियाँ और औरतें सखियाँ बना रही थीं। गाँव-गाँव में मैत्री हो रही थी। तूफ़ान आया है, हवा बह रही है। संथाल तो दोस्त होते ही हैं। महनि बार-बार छटराय के पास जाती। छटराय ने छेनी-हथौड़ी माँगी थी। वह छेनी-हथौड़ी पहुँचा ज़रूर देती, पर बीच में ही भयानक नगाड़ों की आवाज़ पर भगनाडिहि में कोलाहल मच गया था। शाल पेड़ की शाल-गिरह की पुकार पर एक विशाल बरगद के पेड़ के सामने एक पत्थर पर सिदू-कानू खड़े हैं और उन्हें घेर कर खड़े हैं हज़ार-हज़ार संथाल। अरे! यह 1855 ई० के 30 जून को भगनाडिहि गाँव में क्या हो रहा है? महनि सिर पर से बोझा फेंक कर भागी हुई आयी, दोनों हाथ ऊपर उठाये।

"क्या कहती हो, महनि?"

"सिदू सुन, कानू सुन! जो बँधुआ-बेगार हैं, उन्हें क्या दिकू लोग छोड़ देंगे? उनका क्या हिसाब होगा?"

इस बात के जवाब में हज़ार-हज़ार टाँगियाँ हवा में उठ गयीं। हज़ारों-

हज़ार स्वर गूँज उठे—

राजा जमींदार महाजन नहीं
बंगाली पच्छिमी कारबारी नहीं।
हाकिम व साहेब नहीं।
पुलिस नहीं।
वकील नहीं।
सबको नहीं कह देंगे।
रहेंगे संथाल।
होगा संथाल-राज।

सिदू-कानू ने कुछ कहा और तमाम संथाल एक साथ चिल्लाये, "हुल-माहा !" भगनाडिहि के मैदान से कलकत्ता की तरफ़ जाते हुए कमेरे, कुम्हार, तेली, मोमिन, चमार---सब आओ। तुम से हमारा कोई झगड़ा नहीं। संथाल लोगो, आगे बढ़ो !"

इसी तरह बारहेट पहुँचते-पहुँचते कई दिन लग गये। सागर की उत्ताल तरंगों की तरह संथाल आगे बढ़ रहे थे। महनि भागी लालडिहि। सैकड़ों संथाल चले लालडिहि की तरफ़। लालडिहि में मदन साहा का घर है। टाँगी उठा कर महनि दौड़ी। "छटराय की बेड़ियाँ मैं काटूँगी !" "तू काटेगी ? इसी के लिए वह बैठा है।" मदन का गुमाश्ता चिल्लाया, "मुझे मत मारना री लड़की !" छटराय ने पत्थर से बेड़ियाँ तोड़ डालीं और कुदाल से मदन साहा को काट डाला। गुमाश्ते का सिर एक तरफ़ लुढ़क गया। लालडिहि से बारहेट। "जो भी कमेरा है, बँधुआ है, बाहर निकल आयें ! बारहेट के बाज़ार में दिकू महाजन नहीं है। बाजार लूट लो ! आग लगा दो ! महाजन कहाँ है ? थाना कहाँ है, पुलिस कहाँ है ?"

महनि भगनाडिहि लौटी। छटराय कहाँ है ? घर नहीं लौटा। महनि घर पर ही रहे या हुल-विद्रोह में जाये? घोड़े की पीठ पर सवार चाँद आया "महनि, महनि! गोमानि नदी के किनारे हुलमाहा है। मैं किस रास्ते जाऊँ? जिस पथ पर भी बढ़ती हूँ, वहीं हुलमाहा है। मैं कहाँ जाऊँ ? हुलमाहा के रास्ते पर, महनि ! छटराय कहाँ गया ? हुलमाहा के रास्ते !" महनि आगे बढ़ी, पर आकाश परगनाइत ने उसे रोका—"महनि, तुम जाओ

पश्चिम। लोहारों को लालडिही ले आओ!"

"आकाश परगनाइत! मैं बेटे को ढूँढ़ने जा रही हूँ। तुम मुझे कहाँ फँसा रहे हो?"

"महनि दीदी! हुलमाहा के काम में।"

"मैं...मैं करूँगी?"

"हाँ दीदी! लुहारों को साथ रखना ज़रूरी है। लड़ाई तो होगी ही। हो भी रही है यहाँ-वहाँ। लुहार हथियार बनायेंगे। जो बँधुए थे, उन्हें अभी तक हथियार नहीं मिल पाये हैं।"

महनि के भीतर पता नहीं, कौन-सी आग शांत हुई! कहने लगी, "जाऊँगी, लाऊँगी लुहारों को। शाल-गिरह बाँध दे हाथ पर। अच्छी तरह बाँधना, आकाश!"

महनि के हाथों पर गिरह बँधी है। वह लुहारों को ले आयी। महनि दूसरी औरतों के साथ सत्तू पीसती है, चिवड़े कूटती है। लड़के क्या भूखे प्यासे हुलमाहा—विद्रोह करेंगे? जहाँ लुहार काम करते हैं, वहीं लड़ाकू संथाल आते हैं।

"तुमने छटराय को नहीं देखा?"

"देखा है। नहीं देखा है।" अनेकों जवाब मिलते हैं।

धीरे-धीरे आकाश में वर्षा के बादल मँडराने लगे। किसी ने ख़बर दी कि छटराय चाँद के दल के साथ पीर पैंती पहाड़ के ऊपर लड़ रहा है। लड़ाई में गया है। पीर पैंती? महनि सन्ध्या के अँधेरे में मिल गयी। "छटराय, मैं तुझे ढूँढ़ रही हूँ और तू मुझे ढूँढ़ रहा है। फिर भी क्यों नहीं मिलता लुहारों से कह गयी, "बेटे को ढूँढ़ने जा रही हूँ। लौट आऊँगी।"

पीर पैंती में सिदू-कानू साहेबों से लड़ रहे थे, वहाँ छटराय नहीं है। वे बोले, "वह आकाश परगनाइत के साथ है, यहाँ से आगे। वहाँ तू नहीं जा सकती, महनि! यह युद्ध है।"

संथालों के मोर्चे पर ड्रिम-ड्रिम नगाड़े बजते रहे। सामने पहाड़ की ढाल पर आकाश परगनाइत और चाँद मुर्मू के मोर्चे के ऊपर अचानक गोलियों की बाढ़ छूटी। संथाल तीर छोड़ते रहे। बंदूक और तीर। संथाल 'हूल-हुल' कहते हुए पहाड़ से उतरते रहे। भीषण युद्ध नीचे चट्टानों पर। महनि आँखें बंद किये बैठी रही। आहतों की चीख़ वह नहीं सुनेगी। साहब सेनापति पता नहीं, क्या चिल्लाया! सहसा छटराय का चीख़ता हुआ स्वर सुनायी दिया, "आकाश परगनाइत की लाश नहीं दूँगा!"

महनि पलटी। चिल्लायी, "छटराय !"

छटराय फिर गरजा, "आकाश परगनाइत की लाश नहीं दूँगा। वह हमारा है।" गोलियों की ध्वनि। पहाड़ से सिदू-कानू का दल एक अजस्र स्रोत की तरह उतरता रहा। साहब भागते रहे, भागते रहे। भयानक बारिश शुरू हुई। पहाड़ी नाला फूल उठा। महनि उतर आयी नीचे। वह खोज लेगी। ज़रूर खोज लेगी। महनि ने पुकारा। फिर पुकारा। आसमान पागल हो गया था। सीना चीर कर संथालों पर पानी छींट रहा था।

बरसात रुकने पर सब शांत। मशाल हाथों में लेकर संथाल आये। चाँद बोला, "आकाश कहाँ है...आकाश परगनाइत ?"

"यहाँ।"

"कौन, महनि ?"

"हाँ।"

"आकाश ?"

"यहीं है।"

"यह कौन है आकाश को पकड़े हुए ?"

"छटराय।"

छटराय...छटराय ? हाँ वही है।

महनि मुसकरायी। बोली, "आकाश को नहीं छोड़ा। चाँद, दोनों का सिर मेरी गोद में रख दो।"

चाँद झुका।

सवेरा होने लगा। आकाश फीका पड़ने लगा। महनि बोली, "छटराय के कमर से पोटली खोल लो।"

"क्या है इसमें ?...झनझन कर रहा है।"

"इसमें उसके पैरों की वेड़ी है।"

साँकल लेकर महनि ने लालडिहि की तरफ़ देखा। टूटी साँकल लेकर छटराय बाहर आया था। क्यों ? यह अब पता नहीं चलेगा। लालडिहि जायेगी महनि। यह टूटी साँकल लुहार को देगी। वे बँधुआ-बेगारों के लिये हथियार बनाते हैं। फिर ? महनि का सिर हिला। हुलमाहा जो बोलेगी, वह यही करेगी—हुलमाहा का काम। किसी दूसरे काम में उसने छटराय को नहीं पाया और न पायेगी। महनि जंगल में घुस गयी। इस रास्ते से वह जल्दी लालडिहि पहुँच जायेगी।

छटराय रे ! किस साँकल से महनि को तू बाँध गया, हुलमाहु के काम से !

□ □



महाश्वेता देवी

बँगला की प्रख्यात लेखिका महाश्वेता देवी का जन्म 1926 में ढाका में हुआ था। पिता श्री मनीष घटक सुप्रसिद्ध लेखक थे। प्रारम्भिक पढ़ाई शान्तिनिकेतन में हुई। कलकत्ता यूनीवर्सिटी से अंग्रेज़ी-साहित्य में एम० ए० तक की शिक्षा पायी।

महाश्वेता जी वर्षों बिहार और बंगाल के घने क़बाइली इलाक़ों में रही हैं और अब भी विभिन्न जनजातियों से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं में उन क्षेत्रों के अनुभव को अत्यन्त प्रामाणिकता के साथ उभारा है।

ग़ैर-व्यावसायिक पत्रों में छपने के बावजूद इनके पाठकों की संख्या बहुत बड़ी है। 1979 में इन्हें 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' से सम्मानित किया गया।